पाटलिपुत्र की अग्रमहिषी



राजेंद्र सक्सेना

पाटलिपुत्र की अग्रमहिषी

☆ राजेन्द्र सक्सेना ☆

अभिनव प्रकाशन, अजमेर

ISBN 81-85245-34-7

▲ प्रथम संस्करण :- 1993

▲ प्रकाशक :- अभिनव प्रकाशन
पहली मंजिल, 56 कचहरी रोड,
अजमेर - 305 001

▲ मुद्रक :- दी डायमण्ड प्रिण्टिंग प्रेस, जयपुर

▲ मूल्य :- 50.00 रुपये

PATLIPUTRA KI AGRAMAHISHI* by *Rajendra Saxena

प्राक्कथन

पिछले दिनों विश्व प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ सांची जाने का मुझे सुअवसर मिला। मध्य रेल्वे की बम्बई-दिल्ली स्थित मेन-लाईन पर जैसे ही भोपाल जंक्शन से ट्रेन गुजरती, मैं अत्यन्त उत्सुकता से खिड़की के बाहर दृष्टि गड़ाए सांची स्टेशन की प्रतीक्षा करता। फिर चलती ट्रेन से ही सांची के भव्य-स्तूप, उसके कलात्मक तोरणद्वार आदि देखता। देखता ही रहता। मेरा यह क्रम वर्षो तक चलता रहा। मैं अपने वाराणसी प्रवास में सारनाथ की महिमा जान पाया था। किन्तु सांची-प्रवास ने मेरे मन पर एक गहन प्रभाव डाला। घन्टों में स्तूपों, तोरण-द्वारों, स्तम्भों और भग्न तथा खंडहर पड़े चैत्य और संघारामों में भटकता रहा। शिखर पर स्थित गुहामन्दिर के भीतर और बाहर, विशाल प्रांगण में खंडित मूर्तियां, भग्न तोरण, स्तंभ आदि देखकर मेरी कल्पना में अनेक ऐतिहासिक प्रसंग जीवन्त हो उठे।

मेरा प्रारंभिक जीवन उज्जयिनी, दशपुर आदि नगरों में बीता है। मालव का प्राचीन इतिहास सदा से मुझे आकर्षित करता आया है तथा शिप्रा और नर्मदा मेरी आस्था का केन्द्र रहे हैं। सांची-भ्रमण से वे संस्कार जैसे पुनः जाग उठे। तथागत भगवान बुद्ध के प्रति अपार श्रद्धा के कारण वे और उनके उपदेश हिंसा और जीवन-मूल्यों के अवमूल्यन के इस दौर में मुझे सदा प्रासंगिक लगते रहे हैं। अतः यह उपन्यास लिखने के लिए मैं प्रस्तुत हुआ।

मगध-सम्राट् अशोक महान् का शासन काल मौर्यशासन का स्वर्ण युग कहा जाता है। विदिशा और अवन्ति रथ्य से उनका जीवन आरंभ से जुड़ा रहा है। विदिशा की शाक्यानी महादेवी उनकी प्रथम प्रणयनी एवं परिणीता थी, जिनकी जन्मस्थली काकनद (वर्तमान सांची) जनपद थी। यह कथा-बीज जब मुझे इतिहास में मिला, इस उपन्यास की रचना स्वतः ही होती चली गई।

इतिहास संबंधी मेरी अपनी सीमाएं हैं। "पाटलिपुत्र की अग्रमहिषी" को केवल इतिहास सम्मत बनाना मेरा लक्ष्य भी नहीं था। मेरा प्रमुख उद्देश्य था उस की संस्कृति और समाज को जीवन्त करना। यह अपने आप में एक चुनौती भरा अनुष्ठान था। इसके अतिरिक्त अपने कुंभाकालीन उपन्यास "यशोजित" की भाँति मैं इस उपन्यास

को भी दक्षिण से कहीं जोड़ना चाहता था। सौभाग्य वश आन्ध्र के ईसा से तीन शताब्दि पूर्व के शिल्पियों द्वारा बौद्ध धर्म के हीनयान सम्प्रदाय से प्रभावित स्तूप कला एवं तथागत के जीवन के प्रतीकात्मक शिल्पीकरण के लिए सांची के स्तूप-निर्माण में योगदान का ऐतिहासिक संदर्भ मुझे मिला। अतः यह संकल्प भी मेरा पूरा हुआ।

तथापि, "पाटलिपुत्र की अग्रमहिषी" की कथा का संदर्भ केवल बीता हुआ इतिहास ही नहीं है। वह वर्तमान से भी निकट से जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए कलिंग-विजय के फलस्वरूप भीषण नर-संहार एवं युद्ध की करुण विभीषिका से अशोक का "रणघोष" के स्थान पर "धम्मघोष" की नीति अपना लेना आज के युग में विश्व की दो महाशक्तियों द्वारा सैन्यशक्ति घटाने की दिशा में प्रयत्नशील होने जैसा मुझे अत्यंत प्रासंगिक लगा। कुछ प्रसंगों को अधिक संगत और प्रासंगिक बनाने के लिए मुझे कुछ पात्रों एवं घटनाओं की रचना अपनी कल्पना के आधार पर करनी पड़ी हैं। उपन्यास का अन्त एवं कुणाल-तिष्यरक्षिता का प्रंसंग इसी सोच का परिणाम है। वस्तुतः प्रस्तुत उपन्यास इतिहास न होकर के ऐतिहासिक औपन्यासिक कृति है, और इसी परिप्रेक्ष्य में उसे देखा जाना चाहिए।

"पाटलिपुत्र की अग्रमहिषी" की रचना करते समय प्राकृत एवं जैन दर्शन के विद्वान डा॰ प्रेमसुमन जैन एवं मौर्य काल के इतिहासविद् डॉ॰ ललित पांडेय, मित्र-द्वय ने मुझे अपने मूल्यवान सुझाव ही नहीं दिए, मुझे इस दिशा में प्रेरित भी किया, अतः मैं उनका आभारी हूँ। मैं अपनी पत्नी श्रीमती सावित्री का भी अनुगृहीत हूँ जो मुझे गृहस्थी की चिन्ता से मुक्त रखते हुए न केवल इस उपन्यास की रचना में सदा की तरह सहायक हुई, इसके कुछ अंश भी उन्होंने सुने।

अन्त में "पाटलिपुत्र की अग्रमहिषी" सुधी पाठकों और विद्वान आलोचक-बन्धुओं के सामने है। मैं कृतज्ञ होऊँगा यदि वे अपनी प्रतिक्रिया से मुझे लाभान्वित करेंगे।

- राजेन्द्र सक्सेना

एक

उषा की लालिमा आकाश में अब भी आच्छादित थी। दर्शान की लहरियाँ शान्त थी और उसमें प्रतिबिंबित हो रहे थीं विदिशा के भवन, मंदिरों के शिखर। अलसाया-सा जनपद जाग नहीं पाया था।

किंतु नगर-श्रेष्ठी भद्रसेन के भवन में गतिशीलता बढ़ रही थी। आज ही तो आयोजित था वसन्त का मधुपर्व-उत्सव। जनपद के नागरिकों-पौरों का बृहत-पर्व। किन्तु इस उत्सव की महत्ता इसलिए आज और भी बढ़ गई थी क्योंकि इस बार आमंत्रित थे उज्जयिनी के प्रान्तीय शासक तथा मगध के युवराज अशोक। वे ही होंगे मुख्य अतिथि इस बार उत्सव के। प्रमुख स्वागती होगा नगर-श्रेष्ठी भद्रसेन।

अवन्ती-रथ्य की राजधानी उज्जयिनी से विदिशा की ओर जाने वाले राजपथ पर अश्व-द्वय से संचरित रथ शनैः शनैः नगर की ओर बढ़ा चला आ रहा है, जिस पर आरूढ़ हैं युवराज अशोक, पाटलिपुत्र के भावी सम्राट्। चार-चार अश्वारोही सैनिकों से घिरा हुआ है रथ। अश्वों की हिनहिनाहट से शान्त वातावरण भर गया है। नगर-प्राचीर के सिंह द्वार पर आ पहुँचा है अब रथ। अतिथि के स्वागतार्थ पूर्ण कुंभ मस्तक पर उठाए दो सुन्दरियां रथ के संमुख पहुँच चुकी हैं। उनके पीछे हैं नगर पौर और भद्रसेन। नागरिकों के समूह से घिरे से।

युवराज अशोक रथ से उतरे चारण ने तूर्यबजा कर युवराज़ के आगमन की सूचना दी। वे सस्मित नगर के सिंह द्वार की ओर बढ़े जहाँ प्रतीक्षा-रत थी शाक्यानी श्रेष्ठी-कन्या महादेवी। धृतदीप, अगरू-मंडित आरती सजाए। मधुपर्व उत्सव में आज श्रेष्ठी कन्या को ''नगर श्री'' की उपाधि से अलंकृत करेंगे युवराज। अतः युवराज की

अग्रपूजा की वे ही अधिकारिणी हैं ।

किसी लयात्मकता से गतिमान होते हुए हाथों से महादेवी ने युवराज की आरती उतारी । क्षणभर को उसकी दृष्टि युवराज की दृष्टि से जा मिली, और दूसरे ही निमिष वें आंखें लजाकर भूमि की ओर नत हो गई । युवराज ने भरपूर दृष्टि से श्रेष्ठी कन्या की ओर देखा । अपने सम्पूर्ण सौष्ठव से खिले-खिले अरुणाभ-कमल-सा वह सुन्दर मुख युवराज ने देखा और दृष्टि जैसे ठगी-सी रह गई । हृदय में एक अभिप्राय जगा और विचलित से हो उठे युवराज अशोक । नगर-पौर ने सब कुछ समझ लिया, और विनीत स्वर में कहा-''शाक्यानी श्रेष्ठी कन्या महादेवी है स्वामी ? इन्हें ही युवराज ''नगर श्री'' की उपाधि से आज रात्रि को उत्सव में सम्मानित करेंगे ।''

''इन्हें सम्मानित करना तो स्वयं सम्मानित होना है नगर-पौर । हमें देवी शाक्यानी का और अधिक परिचय पाकर अतीव प्रसन्नता होगी ।'' युवराज अशोक ने कहा ।

''इससे मेरी प्रतिष्ठा की वृद्धि कर रहे है युवराज'' ? श्रेष्ठी भद्रसेन ने मंदार और चम्पक पुष्पों की माला युवराज को हर्षित होते हुए पहनायी । युवराज ने क्षण भर मल्लिका के वे पुष्पों की गंध ली और वे प्रतीक्षारत शिविका में बैठ गए । श्रेष्ठी भद्रसेन निश्चिंत-सा हुआ । युवराज के जयधोष से भीड़ छट गई ।

नगर भ्रमण और स्थानीय संकायों के निरक्षण और शासन-व्यवस्था का विवरण प्राप्त करने में युवराज का सम्पूर्ण दिन बीता । रात्रि आ पहुँची । नगर के मुक्ताकाशी सभागार में भीड़ बढ़ने लगी । आधी घड़ी पूर्व ही स्त्री-पुरूषों ने बैठने के अपने-अपने स्थान चुन लिए थे । पुष्प-मल्लिकाओं से सजे मंच के पार्श्व में वाद्य-वृँद-वादक और गायक बैठ चुके थे । दीप दण्ड धारी ग्रीवा झुकाए खड़े थे । सब एकटक मंच की ओर खुलने वाले पार्श्व मार्ग पर उत्कंठा से देख रहे थे कि युवराज आ पहुँचे । चारण ने तूर्य बजा कर पुनः उनके आगमन की सूचना दी । पहली पंक्ति में खड़ी कुमारिकाओं ने उनपर थालों से अंजुलिया भर कर पुष्प वर्षा की । फिर पिप्पणी और मृदंग के स्वर मधुरिमा बिखेरने लगे । सम्मिलित जयघोष के मध्य अभिवादन स्वीकारते युवराज के दोनों हाथ काफी समय तक जुड़े रहे । फिर प्रतिनमन की मुद्रा में वे स्वयं मंडित पीठ पर बैठ गए । उन्हीं के साथ जन-समूह भी अपने-अपने स्थानों पर बैठ गया । सर्वप्रथम मंगलाचरण हुआ । तदुपरान्त मंच पर प्रस्तुत हुई ''मदन-दहन'' वाली नृत्य नाटिका। मंच पर प्रकृति की सौंदर्य रचना होने लगी और सम्पूर्ण जन-समूह नवीन चेतना से भर उठा । पूरी घड़ी अभिनय-नृत्य संगीत से वातावरण गुंजरित होता रहा । फिर ''मदन-

दहन'' और रति-विलाप। दर्शकों का मन करुणा से भर उठा। ''साधु-साधु'' का सम्मिलित स्वर बार-बार उठा। फिर दीर्घ कर्तल ध्वनि हुई। युवराज ने नर्तक दल को मुक्ताहार और स्वर्ण पण्य उपहार में दिये। तभी मंच पर आ पहुँची शाक्यानी श्रेष्ठी कन्या महादेवी। युवराज स्वर्ण मंडित पीठ से उठे। मंच पर आए और पुष्प-किरीट श्रेष्ठी कन्या के शीष पर रख दिया। वे गद्गद् सी क्षण भर को विनय से झुकी और युवराज ने बीच ही में उन्हें कंधों पर हाथ रख धीरे से उठाया। ''बधाई'' युवराज ने कहा। ''आभार'' कहकर महादेवी जाने को मुड़ी। ''फिर कब भेंट होगी?'' युवराज का यह वाक्य केवल शाक्यानी ने सुना। एक बार मुड़कर देखा और सस्मित चल दी। युवराज पुनः सिंहासन पर आ बैठे। सभा विसर्जित हो गई।

वह रात्रि किसी प्रकार बीती। युवराज अशोक जागते रहे। शाक्यानी में ध्यान मग्न। जैसे उन्होंने युवराज को अपने आकर्षण में बांध लिया है। क्षणभर को भी वह छवि युवराज की आँखों से ओझल नहीं हो पाती। उनके मन में एक निर्णय रह-रह कर उदय हो रहा है। प्रातः काल की प्रतीक्षा में ही जग रहे थे युवराज।

नगर-पौर, श्रैष्ठी भद्रसेन और प्रमुख जन अतिथि शाला में उपस्थित हैं। युवराज उज्जयिनी लोटेंगे। उन्हें वे विदा देंगें। किन्तु श्रेष्ठी भद्रसेन को अंतः कक्ष में अब युवराज ने बुलाया है। कोई मंत्रणा चल रही है। श्रेष्ठी कन्या महादेवी भी कक्ष में हैं।

युवराज अशोक ने कहा-''नगर-श्रेष्ठी। तुम्हारी कन्या विवाह योग्य है न ?''

''हां स्वामी।'' श्रेष्ठी ने उत्तर दिया।

''हम उनका पाणिग्रहण करेगें।

यह गंधर्व-विवाह होगा।'' युवराज ने संकल्प पूर्वक कहा।

''मुझे स्वीकार है युवराज। यदि महादेवी भी उसके लिए प्रस्तुत हो।''

''मैं वही चाहूँगी जो सबके लिए उचित हो।'' निःसंकोच महादेवी ने कहा।

''मुझे विश्वास था पुत्री। तुम्हारे मुख से कुछ अनुचित निकलेगा ही नहीं।'' नगर श्रेष्ठी भद्रसेन ने अपना हाथ महादेवी के शीर्ष पर रख दिया।'' तुम्हें स्वीकार है ने वत्स ?'' धीरे से भद्रसेन ने पूछा।

''हां तात।'' महादेवी का गला भर आया। आधी घड़ी में मंत्रणा समाप्त हो गई। नगर-पौर, प्रमुख जन सब अपने-अपने भवनों को लौट गए। युवराज अशोक उज्जयनी आज नहीं लौटेगे। वे श्रेष्ठी-कन्या महादेवी से गंधर्व-विवाह करेगे आज रात्रि को।

नगर में यही चर्चा हो रही है। नागरिकाऐं महादेवी के भाग्य की सराहना कर

रही है। समवस्यक सखिया उसका उपहास कर रही हैं। विनोद के क्षण जैसे फिर लौटेंगे नहीं।

अत्यंत महत्वाकांक्षी है श्रेष्ठी भद्रसेन। युवराज अशोक के जामाता के रूप में पाने का अर्थ केवल राजकुल से संबंध जोड़ना ही नहीं है, व्यवस्था से सुविधाओं का पाना भी है। वे सुविधाऐं जो उसके व्यवसाय की अधिक उन्नति कर सकेगा। निष्कर्षतः उसकी गणना अवन्ती-रथ्य के प्रमुख श्रेष्ठियों में होने लगेगी। विदिशा के व्यापारिक संगठन का वह प्रमुख तो है ही। इस नए प्रभाव से वह सम्पूर्ण प्रदेश में ख्याति अर्जित कर सकेगा।

श्रेष्ठी भद्रसेन की वाटिका में इस समय शान्ति है। मंदार और शिरीष के पुष्पित वृक्षों की सघन छाया में पुष्करिणी के कमल खिल आए हैं। फाल्गुन शुक्ल पंचमी का चन्द्रमा उन वृक्षों के पीछे मुँह छिपाए हुए हैं। आम्र बौर की मृदु-गंध लिए पवन डोल रहा हैं। एक दूसरे के कंधों का आश्रय लिए खड़े हैं युवराज अशोक और महादेवी। श्रेष्ठी कन्या के मस्तक पर चन्द्रिका-तिलक, ओठों पर रक्त-राग शोभा पा रहे हैं। रक्त कौशय में बंध उरोजों पर झूलता जूही का पुष्पहार और केशों में बंधी मौलिश्री-वेणी सुगंधित कर रहे है सम्पूर्ण वातावरण को। कलाईयों में पहने हुए स्वर्ण-वलय जब-तब खनक उठते हैं।

"कल प्रातः हम उज्जयनी पहुँच जाए तो देवी ! तब तुम मेरी युवराज्ञी के रूप में जानी जाओगी। मगध-साम्राज्य की भावी साम्राज्ञी तुम्हीं तो बनोगी ?" कहते-कहते युवराज अशोक ने शाक्यानी को आलिंगन में भर लिया। महादेवी मौन रहीं। युवराज ने सोचा लजा रही हैं अथवा कदाचित भावी सपनों का संसार उनके सम्मुख कल्पनाएं रच रहा है। किन्तु न जाने क्यों युवराज्ञी और फिर भावी साम्राज्ञी बनने की पुलक और वह भाव उनके मन में स्फुरित नहीं हो पाता। उसके भीतर एक अन्य ही कल्पना जन्म लेती है। राजपुरु षों का हृदय क्या स्थिर होता है ? क्या वे संतुष्ट हो पाते हैं अपने वर्तमान से ? कौन साक्षी है कि ऐसी ही तीव्र कामना किस किस के लिए नहीं जागती है उनके मन में ? फिर राज-प्रासाद में रहने का अर्थ क्या हैं ? उसने सुना है-शुक और सारिकाऐं भी मनोविनोद करती हैं राजकुलका। उन्हें कहां मिलता है वह मुक्ताकाश ? वृक्षों के घने कुंज और वन ? नदी का सुरम्य तट ? राज प्रासाद का जीवन किसी स्वर्ण-पिंजरे में निवास करने से कम नहीं है।

और तब छूट जायगा यह पितृगृह, माता-पिता, समवयस्काएँ, सहेलियाँ, यह

दर्शान नदी, यह मेरी जन्म स्थली काक-नद। मगध की अधीश्वरी बनने की प्रत्याशा में...............

''तुम्हारे मन में कुछ जाग रहा है भद्रे ?''

युवराज ने पूछा।

''कुछ नहीं।'' कुछ भी तो नहीं।'' धीरे से महादेवी ने उत्तर दिया।

''फिर भी क्या सोच रही थी प्रिये।''

''यही कि मैं अब आपका ही एक अंग हूँ आर्यपुत्र, जिसके आप स्वामी हो। आप एक मात्र स्वामी।'' शाक्यानी ने एक गहरी निःश्वास ली।

सुनकर युवराज अशोक किंचित हंस पड़े।

विदिशा के बसंतोत्सव पर्व से उज्जयिनी लौट आए हैं युवराज अशोक। किन्तु अकेले नहीं। साथ हैं युवराज्ञी महादेवी शाक्यानी। यह समाचार नागरिको और पौर-जनों को आनन्दित कर रहा है। आज रात्रि राजभवन और निवासों, मंदिर-शिखरों पर ''दीपमाला'' सजेगी। शिप्रा तट पर अधिष्ठात्री देवी ''विंध्यवासिनी'' की विशेष, पूजा तथा महाकाल-वन स्थित देवालय में होगी शिवअर्चना।

उज्जयिनी बहुत प्रिय है युवराज को। वह स्वयं को इस प्रदेश का शासक ही नहीं, अवन्ती रथ्य की इस राजधानी का प्रमुख और प्रथम नागरिक भी मानते हैं। फिर मगध और अवन्ति की यह मैत्री युवराज से बहुत पहले परम भट्टारक नाग कुलीय महाराज बिबंसार और अवन्ती के पूर्व शासक चंद्र प्रद्योत के मध्य भी थी। महाराज श्री ने ही तो अपने व्यक्तिगत चिकित्सक जीवक को भेज कर मालव गण राष्ट्र के तात्कालीन शासक प्रद्योत को निरोग बनाया था। उज्जयिनी राजनैतिक दृष्टि से अब मगध साम्राज्य के अधीन अवश्य थी किन्तु उसके द्वारा प्रदेशाध्यक्ष और महापात्र की नियुक्ति के उपरान्त भी नागरिक स्वयं को स्वतंत्र अनुभव करते थे। भूमि तथा न्याय का प्रभारी अधिकारी राजुक था जिसका चयन स्वयं प्रजा करती थी राजुक युवराज के निरीक्षण और परामर्श से कार्य करता था, जिसकी विधिवत नियुक्ति प्रांतीय शासक की सहमति से की जाती थी। इस सुदूरस्थ प्रान्त में युवराज अशोक को शासक बनाकर मगधाधिकारी चिंतामुक्त थे।

तब यही उज्जयिनी जिसका शाब्दिक अर्थ ही होता है विजयप्रदायिनी, अपने व्यवसाय, कला और साहित्य का प्रमुख केन्द्र थी। उज्जयिनी से चार राजपथ उत्तर दिशा में विदिशा तथा एरण होकर कोशाम्बी, दखिण में महिष्मती होकर प्रतिष्ठान तथा

पश्चिम में दशपुर होकर मथुरा, तथा दक्षिण-पश्चिम में भृगुकच्छ को जोड़ते थे। अत्यन्त समृद्ध व्यापार के कारण अनेक श्रेष्ठियों से भरी-पूरी उज्जयिनी राज अनुष्ठानों की पवित्र भूमि ही नही थी, अपितु नागरिक आमोद-प्रमोद-मय आनन्द का जीवन जीते थे। आकर्षक आवासों, उद्यानों और वीथियों से जीवन्त उज्जयनी ऐसी ही थी जिसमें युवराज अशोक मगध को प्रायः भूल चुके थे। श्रेष्ठी, तपस्वी, परिव्राजक अर्हत, श्रमण-श्रमणी, कुल-वधुएँ, नृतकियों, गणिकाएं, कलावंतो, ज्योतिषियों, तांत्रिकों, सिद्धों गृहस्थ-उपासको, मंदिरो, पान-गृहों और धूत सालाओं से युक्त शिप्रातट वासिनी उज्जयिनी को ही भगवान बुद्ध ने महाकात्यायन को भेजकर बौद्ध धर्म के प्रचार का केन्द्र बनाया था।

शाक्यानी महादेवी के लिए यह जनपद नया नहीं है। अपने पिता श्रेष्ठी भद्रसेन के साथ अनेक बार वह उज्जयिनी आई है। फिर उसकी जन्मस्थली काकनद भी तो विदिशा और उज्जयिनी के मध्य में स्थिर है। किन्तु नया है जीवन का यह चरण जिसे वह आरंभ कर रही हैं, युवराज अशोक की प्रथम प्रेयसी परिणिता बनकर। आज उसे स्मरण आ रहा है भिक्षु आलिन्द का वह सारा कथन, जब वे श्रेष्ठी भद्रसेन के अतिथि थे। अतिथी शाला प्रतिदिन ही भिक्षु आलिन्द का वह प्रवचन सुनने जाती ती। तरुण आलिन्द, सिर घुटा हुआ, कानों में बड़े आकार के कुंडल, मुख पर तपस्या और ब्रह्मचर्य का तेज। वे बुध्द जन्म और महाभिनिष्कृपण की कथा सुना रहे थे और संपूर्ण एकाग्रता से सुन रही थी शाक्यानी। भिक्षु अलिन्द ने तथागत के कथन को दोहराया था- यह निर्वाण आयतन है, जहां न पृथ्वी है न जल, न तेज न वायु। न आकाश भवन, न विज्ञान भवन, न किंचायतन, ननैत्र, संज्ञानायतन, वहां न लोक है न परलोक, न प्रकाश देने वाला सूर्य है न चन्द्रमा। उस निर्वाण को मैं न अगति कहता हूँ न गति ही कहता हूँ। वह न तो कहीं ठहरा है, न प्रवर्तित ही होता है। उसका न कोई आधार ही है। वरंच वह निर्वाण पद है, जो सभी दुःखो का अन्त है। उसके स्वरूप का वर्णन शब्दों से परे है। अनिदर्शन अनन्त और कांतियुक्त, जहां जल, पृथ्वी, तेज, वायु नहीं रहते।

"यह कौनसी सनातन साधना है? कैसा सर्वव्यापी सुख बोध? तब किस अभीष्ट की कामना की जाए? क्या मनुष्य की उद्दाम लालसाओं और लोलुपताओं का अन्त कहीं संभव है? यदि संभव है तो कैसे? जीवन के संपूर्ण भोग और भौतिक सुख प्रवृति मूलक है। फिर निवृति का मार्ग कौनसा है? यदि एहिक जीवन जड़ोन्मुखी है फिर चिन्मुखी होने का साधन कौन सा है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर हमें खोजना

है।"

यह सब सुनकर एक नया आग्रह और मूल्यबोध शाक्यानी महादेवी में जगा था। तब निश्चय किया था मन ही मन, वह प्रवज्या ग्रहण कर धर्मचक्र में दीक्षित हो जाएगी। किन्तु उसका अवसर ही नहीं मिला। पति की अनुगमिनी बनकर जीवन बिताएगी अब महादेवी।

दो

पाटली पुत्र। मौर्य साम्राज्य की राजधानी। गंगा और सोण के संगम पर स्थित यह नगरी और इसके मूल में अवस्थित है यह कथा।

जल-आपूरित विशाल खाई, लकड़ी के चौंसठ द्वार और पाँच सो सत्तर बुर्जों से युक्त काष्ठ की विशाल प्राचीर जिसे घेरे हुए थी। मध्य में स्थित था काष्ठ-निर्मित विशाल कक्षों, अट्टालिकाओं, उद्यानों से घिरा अद्भुत कलाकृति-संपन्नराज प्रासाद। दूसरे तल के एकान्त कक्ष में शैया पर अर्ध-लेटे परम भट्टारक महाराधिराज बिन्दुसार खुले वातायन से एक टक गंगा को निहार रहे हैं। गंगा जो प्रतीक है भारत की संस्कृति की। कितना व्यापक और गरिमामय है इसका चरित्र ? न जाने कितनी शताब्दियों से इस देश ने अपनी श्रद्धा प्रदान की है भागीरथी गंगा को। कितना अलौकिक लगता है गंगा का यह स्वरूप दुश्चिंताओं से त्रस्त मानव-मन के लिए परम शान्ति का स्त्रोत है पयस्वनी गंगा। परम भट्टारक जैसे अनवरत गंगा को निहारते उसी शान्ति को पाना चाहते हैं। रोग से कृष्ण और दुर्बल शरीर को कहीं अधिक जर्जर कर रही है मानसिक चिंता। चिंता मगध के साम्राज्य की। चिंता पाटलीपुत्र और उसके भविष्य की। जन्म जितना बड़ा सत्य है, उतना ही बड़ा सत्य है मृत्यु। तथापि चिंता मानव मन के मूल में हैं।नए-नए विहारों का उदय हो रहा है महाराज के मन में।"पिताश्री महाराजधिराज चन्द्रगुप्त की वह दिग्विजय, मगध के विशाल साम्राज्य की स्थापना, और इसे प्रदान

की गई दृढ़ता और स्थापित्व मुझे विरासत में मिली थी। उसकी रक्षा करने में मैं कितना समर्थ हुआ ? फिर मगध के शत्रुओं की संख्या न तब कम थी, और न अब कम हैं। जहां एक ओर भावी इतिहास पिता श्री के पराक्रम और विजेता की कथाऐं अंकित करेगा वहां दूसरी ओर तुम्हारा उल्लेख किस संदर्भ में होगा बिन्दुसार?'' यही प्रश्न बार-बार शूल की तरह हृदय में चुभता हैं। जानते हैं परम भट्टारक उनकी मृत्यु के तुरन्त बाद उत्तराधिकार का प्रश्न उठ खड़ा होगा।'' ज्येष्ठ है सुसीम, जो अभी से उपयुक्त अवसर की ताक में है। उनके अपने जीवनकाल में सिंहासन पर अधिकार करने के लिए षड़यंत्र करने में वह तनिक भी नहीं चूकेगा। दूसरी ओर उसका प्रतिद्वंद्वी है अनुज अशोक। अशोक को अवन्ती रथ्य का प्रादेशिक बनाकर पाटलिपुत्र से मैनें दूर रखना चाहा था। किन्तु उसके गूढ-पुरुषों की संख्या इस राज प्रासाद में कम नहीं है, जो उसे प्रत्येक गतिविधि की सूचना देते हैं। कितना रक्त बहेगा तब ? कौन जानता है ? राजसत्ता की महत्वाकांक्षा स्नेह को चुका देती है। तभी परिवार के विघटन का आरम्भ होता है। सत्ता भोगने की प्रवृति हिंस्र पशु से भी बढ़कर बना देती है मनुष्य को। तब करने योग्य और न करने योग्य का विवेक समाप्त हो जाता है। सारे आदर्श धूमिल हो जाते हैं। नष्ट हो जाते हैं मानव मूल्य।''

यह वही राजप्रासाद है जिसमें कभी आगन्तुकों की भीड़ रहती थी। भरे रहते थे अतिथि शाला के सभी कक्ष। अब कितना सुनसान लगता है ? कितनी स्पष्ट सुनाई देर रहा है पुण्य-सलिला की प्रवाहमान उर्मियों का कलकल। और सूदूर दिखाई देती है सोण की क्षीणधारा।

अपने दुर्बल हाथों को शैया पर टेककर परम भट्टारक पर्यंक से उठे। श्लथ-देह का भार सह नहीं पा रहे थे। युगल चरण और जंघाऐं। वे परिचारिका के कन्धे का आश्रय लेकर पुनः शैया पर बैठ गए।

''दासी ! तनिक देखो, महामात्य अपने प्रासाद में हैं। तुरन्त सूचित करो कि उन्हें स्मरण किया है।'' वे क्षीण स्वर में बोले।

''जो आज्ञा महाराजा'' दासी ने बड़ा-सा मोर पंखों वाला व्यजन परिचारिका को दे दिया और स्वयं शीश झुकाऐ बाहर हो गई। प्रतीक्षा में आधी घड़ी बीत गई। परम भट्टारक के मन में द्वंद्व चलता रहा। सिंहासन का उत्तराधिकार किसे दूँ ? अनिर्णय की स्थिति में वही होगा जिसे टालना चाहते हैं महाराज।

''तब आमने सामने होगे सुसीम और अशोक। और उनकी सेनाएं और समर्थक।

कौन किसका वध करेगा ? किसकी पराजय होगी ? किन्तु मैं विवश देखूँगा। असहाय पाटलिपुत्र को अन्तिम प्रणाम कर विदा ले लूँगा। क्या तबतक यही सब देखने को जीवित रहना होगा मुझे ? पता नहीं, मेरे भाग्य में क्या बचा हैं ?''

कुछ पल यों ही बीते थे कि महामात्य राधा गुप्त आ पहुँचे। उनके धवल केश और दाढ़ी युक्त मुख पर चिंताओं की रेखाऐं अधिक उभर आई थीं।

''प्रणाम महाराज।'' राधागुप्त ने अभिवादन किया।

''प्रणाम महामात्य। अपना आसन ग्रहण करो।'' न जाने परम भट्टारक की वाणी में कम्पन कैसे आ रहा था। न उनकी दृष्टि स्थिर और न वाणी ही।

महामात्य राधागुप्त ने देखा–महाराज की अस्थिरता बढ़ती ही जा रही है।

''राजवैद्य कहते हैं स्वामी ! आप शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करेंगे। कदाचित औषधि के प्रभाव में विलम्ब हो।''

''नहीं महामात्य, राजवैद्य के यह कथन केवल सांत्वना हैं। मात्र सांत्वना। मैं जानता हूँ सत्य क्या है ? और सत्य है मेरा अन्त, जो सन्निकट है।''

''मुझे क्या आज्ञा है, महाराज ?''

''आज्ञा नहीं अनुरोध है महामात्य।

तुमने सदा मगध साम्राज्य का हित चाहा है। उसको सुदृढ़ करने और प्रतिष्ठा बढ़ाने में तुम्हारा योगदान अभूतपूर्व रहा है महामात्य।''

''वह मेरा कर्तव्य था महाराज।''

''नहीं भद्रे। केवल कर्तव्य नहीं। कर्तव्य से कुछ और अधिक। मैं जानता हूँ सैनिक शक्ति के बिना साम्राज्य नहीं टिकता। किन्तु कूटनीति भी आवश्यक है। उसी तुम्हारी कूटनीति की तुम्हारे महाराज परीक्षा पुनः लेना चाहते है। पिता होकर हम इस समस्या को सुलझाने में असमर्थ हैं। तुम जानते हो, हम चाहते हैं सुसीम को सिंहासन मिले। यह पिता का मन है। शासक का मन कहता है, सुसीम योग्य नहीं है। वह तक्षशिला के विद्रोह को दबा न सका और पराजित होकर पाटलिपुत्र लौट आया। किन्तु अशोक ने विद्रोह को कुचल दिया। उसने उस पर विजय पाई। और इसी विजयोपलक्ष में हमने उसका विवाह राजकुमारी असंधिमित्रा से करा दिया। हम असंधिमित्रा कोही इस साम्राज्य की भावी साम्राज्ञी के रूप में देखते आए हैं महामात्य।''

''आपके कथन का स्पष्ट अर्थ है महाराज की आप युवराज अशोक को मगध का सिंहासन देने की स्वयं सोच रहे हैं।''

"नहीं महामात्य। मेरे कथन का अर्थ इतना स्पष्ट नहीं है। मनुष्य का जीवन अनेक द्वंद्वों से भरा पड़ा हैं। द्वंद्व जो उसे आक्रांत करते हैं। जैसे द्वंद्वों की एक लम्बी श्रृंखला है, जो समाप्त ही नहीं होती। मेरा द्वंद्व सुसीम है, अशोक नहीं महामात्य।"

फिर इन दोनों में कौन अधिक शक्तिशाली और सुयोग्य है, उसका निर्णयक मैं नहीं कर पाता। मैं नहीं जान पाता कि इस रोग का सही निदान क्या हैं ?

इसी समय प्रतिहारी आ पहुँचा।

"महाराज की जय हो" - कर बद्ध प्रणाम कर प्रतिहारी क़क्ष में खड़ा रहा।

"कहो ? क्या समाचार है ?" महाराज बोले।

"कुमार सुसीम दर्शनार्थ उपस्थित हैं स्वामी। तुरन्त महाराज से भेंट करने का आग्रह है।"

"किन्तु हम महामात्य से मंत्रणा में व्यस्त हैं। तुम नहीं देख रहे हो ? भेंट का यह कौनसा अवसर है ?

"क्षमा करें अन्नदाता। कुमार और अधिक प्रतीक्षा ....।"

किन्तु प्रतिहारी की बात पूरी नहीं हो पाई। अपनी सम्पूर्ण गरिमा भूलकर सुसीम कक्ष में आ पहुँचा।

क्षणभर को महाराज ने उसके मुख की ओर देखा। फिर महामात्य को संकेत किया कि वे बाहर चले जाऐ। सुसीम के इस व्यवाहर ने जैसे उनकी पीड़ा को और बढ़ा दिया। उनकी दृष्टि सुसीम के मुख पर जमी रही।

"प्रणाम पिताश्री।" सुसीम को अपनी भूल का एहसास हुआ। प्रणाम की मुद्रा में उसके दोनों हाथ जुड़े रहे। महामात्य चिंतित हुए। इस उद्दंडता का दंड मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। किन्तु पिता के मन से कितने विवश हैं परम भट्टारक। महामात्य यह भी जानते हैं, कुमार ने कितना बड़ा संकट अपने लिए उपस्थित कर दिया हैं ? परम भट्टारक चुप रहे। महामात्य राधागुप्त कक्ष के बाहर आ गए।

"मगध के राज्य-सिंहासन का वैध अधिकारी मैं हूँ महाराज। मैं युवराज सुसीम। क्या आप मुझे पहचान नहीं पा रहे हैं तात् ?" सुसीम ने अपने स्वर को अधिक ऊँचा किया। किन्तु परम भट्टारक के नेत्र धीरे-धीरे मुंद चले। वे शीश एक और झुकाए संज्ञा-शून्य से होने लगे। कुछ देर सुसीम उस मुख को देखता रहा। फिर दासी को आदेश दिया" लगता है पिता श्री संज्ञा-शून्य हो गए हैं दासी। एक पात्र में सुशीतल

जल लाओ। तत्काल।''

दासी कुछ ही क्षणों में सुशीतल जल ले आई । शैया के निकट पीठ पर आसीन कुमार ने महाराज के मुखपर जल के अनेक बार छीटें दिये । महाराज की संज्ञा लौट आई ।

''कुमार सुसीम ? तुम सुसीम ही हो न ?''

महाराज के मुख से निकला ।

''हाँ महाराज, मैं सुसीम ही हूँ । आपका ज्येष्ठ पुत्र । अपनी उद्दंडता के लिए क्षमा चाहता हूँ तात् । लगता है आप काफी अशक्त हैं पिता श्री । साम्राज्य की चिंता करने के अब दिन नही है आपके । मुझपर सबकुछ छोड़कर निश्चिंत हो जाइए तात्।''

''निश्चिंत । हाँ, मैं निश्चिंत ही हो जाना चाहता हूँ । तुम निश्चिंत कर सकोगे मुझे ।'' कहते कहते परम भट्टारक एक करुण हंसी हंसकर मौन हो गए । ....

किंकर्तव्य विमूढ़-सा हो गया सुसीम । कोई उत्तर उसकी समझ में आ ही नहीं रहा था । एक साथ विचार उसके मस्तिष्क में कौंधे । तक्षशिला में अपनी पराजय भूला नहीं था सुसीम । और अनुज अशोक ? आज भी उसका स्मरण कर सुसीम का हृदय कांप उठता है । यदि परम भट्टारक ने उसके पक्ष में निर्णय लिया तो वह मौन नहीं बैठेगा । वह इस निर्णय के विरूद्ध विद्रोह करेगा । और तब महामात्य राधागुप्त, महाबलाधिव्रत, सुबंधु, कवि आमात्य, किसके पक्ष में होगे ? उत्तरा पथ, अवन्ती रथ्य, दक्षिणा पथ और यह प्राच्य प्रदेश, जिसमें अवस्थित है पाटलिपुत्र, क्या मगध के एक छत्राधिकार में रह पाएगे ? किस की किसके प्रति कर्तव्य निष्ठा है, कौन जानता है?

''पिताजी को कदाचित् विश्राम की आवश्यकता है ?'' सुसीम ने धीमे स्वर में कहा । उत्तराधिकार का प्रश्न ऐसे ही नहीं सुलझेगा । उसे अपने विश्वस्त जनों से तुरन्त परामर्श करना होगा । अपनी शक्ति को वह तोलेगा । तभी निर्णय करेगा । यदि सैन्यबल उसके साथ होगा, वह तुरन्त स्वयं को परम भट्टारक घोषित कर देगा । अग्रमहामात्य कदाचित उसका साथ दें । कदाचित राज पुरोहित उसके पक्ष में हो जाऐ । ब्राह्मण धन-लोलुप होता है । वह सर्वप्रथम राजकोष पर बलपूर्वक अधिकार कर लेगा । और फिर धन से निष्ठाऐं क्रय करेगा । इस विश्व में यही होता आया है । यही होगा ।

सुसीम को लगा, यही युक्ति सर्वोत्तम रहेगी । मन में एक संकल्प जागा । पीठ से उठ खड़ा हुआ कुमार ।

''हां वत्स । मुझे तनिक विश्राम चाहिए ।'' कहकर परम भट्टारक ने अपने नेत्र

मूंद लिए। कुमार सुसीम पीठ से उठा और कक्ष से बाहर आ गया।

"वसुमती।" अपने कक्ष में पहुँचते ही सुसीम ने पुकारा। वह तुरन्त पति के सम्मुख उपस्थित हुई।

"क्या पिताश्री मान गए ? क्या आपके पक्ष में निर्णय हो गया ? क्या मगध की भावी साम्राज्ञी मैं स्वयं को मानूं ?"

"इतने प्रशन एक साथ न करो प्रिय। यह निर्णय इतनी सरलता से नही लिए जाते हैं। इसका निर्णय केवल पिताश्री के हाथ में भी नही है।"

"तो किसके हाथ में है ?"

"इसका निर्णय वही करेगा जो अधिक बलशाली होगा। मैं अथवा अनुज अशोक।"

"स्वामी।"

"हाँ प्रिय।"

"अर्थात"

"अर्थात अनुज अशोक को मार्ग से बलपूर्वक हटाना होगा।"

"वह आपके अनुज है स्वामी। विमाता के पुत्र ही सही। स्नेह के अधिकारी हैं। आप यह अतिचार करेंगे ? यह दुस्साहस कर पाएंगे आप ?"

"राजनीति में कोई किसी का तात् नहीं होता, न कोई किसी का पुत्र। कोई किसी का अग्रज नहीं होता न अनुज। यह अतिचार नहीं होगा प्रिय। दुस्साहस के बिना विजयलक्ष्मी किसी को वरण नहीं करती।"

"विजयलक्ष्मी किसका वरण करेगी ? उसका निर्णय क्या मनुष्य के हाथों में है ?"

"हाँ प्रिय है। मनुष्य के ही हाथ में है। उसका शौर्य और साहस। दोनों की निर्णायक भूमिका होती है वसु।"

"किन्तु क्या यही विकल्प शेष है स्वामी ? फिर धर्मच्युत धर्मसम्मत क्या है? मैं नहीं जानती आर्य पुत्र !"

"मैं भी नहीं जानता। न जानना चाहता हूँ। मगध साम्राज्य को पाना मेरा एक मात्र लक्ष्य है प्रिय। इस गुरूत्वाकर्षण के परे मेरे लिए कुछ भी नही है।"

"कुछ भी नहीं ?"

"हाँ कुछ भी नहीं। मैं पूर्ण रूप से इसी में आबद्ध हूँ। सारे द्वार जैसे मेरे लिए बन्द हैं। धर्मयुद्ध, धर्मसम्मत क्या है सोचने का अवकाश ही कहां हैं ?"

"मेरे विषय में सोचने का अवकाश ? मेरे ही नहीं । उसके विषय में सोचने का जो मुझमें गर्भस्थ हैं ।"

"वह सब विचारणीय होगा किन्तु अभी नहीं । बिना अधिकार के मैं कौनसी सुरक्षा तुम्हें दे सकूंगा । तुम्हें अथवा तुम्हारे गर्भस्थ को । मेरे पास ऐसा कोई कवच नहीं है, प्रिय ।"

"मुझे भय लगता है स्वामी ।"

"इस भय का कारण तुम्हारी चिन्ता । अधिक सोचना ।"

"किन्तु अचिंतन की स्थिति भी तो संभव नहीं है मेरे लिए स्वामी ?"

"मेरा तात्पर्य है असुरक्षा का भाव जिससे तुम ग्रस्त हो । असुरक्षा और भावी की चिन्ता । अब कोई तर्क नहीं करोगी तुम ।"

"स्वामी ।"

"हां वसु, प्रिय । मेरी दुश्चिंताऐं कम नही है । मुझे और अधिक चिन्ता में न डालो प्रिये ।"

सुसीम ने अपना वेष्टन शीश पर से उतारा । फिर उत्तरीय ठीक करता हुआ आनन्दपर्यक पर लेट गया । वसुमती आसव मिश्रित शीतल पेय ले आई । पति के हाथों में उसे थमा कर वह सुसीम को एकान्त में छोड़कर चली गई । उस रात्रि कुमार को गाढ़ी नींद आई ।

रात्रि की किस घड़ी में एक अश्वारोही अवन्ती-रथ्य की राजधानी उज्जयिनी की ओर किस द्वार से कूंच कर गया, कोई जान नहीं पाया ।

तीन

उज्जयिनी के राजभवन में अनेक वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी तरुण शिशु अलिन्द के प्रवचनों का बार-बार शाक्यानी को स्मरण आता है । वह स्मृति प्रदीप्त करती है मन में पुनःपुनः अनाशक्ति की चेतना । प्रथम पुत्र महेन्द्र की जननी, और फिर पुत्री

संघमित्रा के प्रसव की पीड़ा। उस चेतना को उभरने का अवसर ही नहीं दिया था। किन्तु अब ? अब कुछ और करना शेष ही नही है। वैसे भी उसका स्थान अब ले लिया है असंधिमित्रा ने। वे ही हैं युवराज ही सहधर्मिणी, राजमहल में वे ही निवास करेगी उज्जयिनी की प्रथम नागरिका बनकर। शाक्यानी महादेवी विदिशा लौट आई हैं। अब उनका स्थायी निवास विदिशा ही में होगा। उधर असंधिमित्रा में व्यस्त हैं युवराज। इधर भद्रसेन वृद्ध हो चले है। विधुर भद्रसेन की सेवा करेगी शाक्यानी। पितृ सेवा के साथ साथ पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा। उनकी समुचित लालन-पालन का भार भी शाक्यानी पर है। जीवन का एक अर्थ यह भी तो है। दूसरा अर्थ है जीवन के सार को खोजना और असार को त्यागना। तभी कदाचित शान्ति मिलेगी।

प्रातः की पो अभी फटी नहीं है। आकाश में उषा की लालिमा व्याप्त है। एक अश्वारोही तीव्र गति से उज्जयिनी आ पहुँचा है। अश्वारोही ने गोपनीय परिचय पत्र दिखाया दौवरिक को, और उसे युवराज के सम्मुख तुरन्त उपस्थित कर दिया गया।

युवराज अशोक देवाचंन कर भवन की अट्टालिका में पूर्वोन्मुख खड़े थे। अश्वरोही को पहचान कर तुरन्त नीचे उतर आए। अश्वारोही ने विनीत प्रणाम किया।

"तुम हो गुप्तचर ? क्या समाचार है ?"

युवराज ने पूछा।

"समाचार महामात्य राधागुप्त ने भेजा है युवराज।"

"कोई पत्र ?"

"नहीं, मौखिक। पत्र लिखना असुरक्षित था। फिर उसका अवकाश ही कहा था स्वामी।"

"संदेश स्पष्ट कहो।"

"संदेश है परम भट्टारक मरणासन्न है। अब विलम्ब न हो। आप भावी परम भट्टारक हैं युवराज। तत्काल पाटलिपुत्र पहुँचिए।"

"कोई अवरोध ?"

"क्षमा करें युवराज। युवराज का मार्ग अवरुद्ध करने को उद्यत है ज्येष्ठ कुमार सुसीम।"

"तुम्हारे कथन की पुष्टि ?"

"महामात्य की हस्तमुद्रा अंकित यह परिचय पत्र।"

"ठीक है, तुम विश्राम करो सैनिक।" कहते हुए युवराज अशोक ने वह परिचय

पत्र ले लिया और तत्काल अंतः कक्ष मे आ पहुँचें। अतिशीघ्र नगर पौर अभयदत्त और दंडपाल दुर्जय को बुला भेजा। गूढ़ मंत्रणा आरंभ हो गई।

"हमारी पाटलिपुत्र की यात्रा का तुरन्त प्रबन्ध किया जाए नगर पौर। साथ होगे एक शत चुने हुए अश्वारोही सैनिक जिसकी व्यवस्था करेंगे दंडपाल। अर्द्धरात्रि को हमारा प्रस्थान होगा। किन्तु इसे गोपनीय रखा जाए।"

"जो आज्ञा स्वामी।" नगर पौर ने कहा। वे दंडपाल के साथ उठ खड़े हुए।

"आप दोनों सतर्क रहें। अवन्ती रथ्य की सुरक्षा हम आपको सौंपते है।"

"आप चिंता न करे। सेना का एक अंग यही रहेगा।" कहकर नगर पौर अभयदत्त ने युवराज को आश्वस्त किया।

अभयदत्त और दुर्जय शीघ्र नीचे उतरे। अपने-अपने अश्वों पर आसीन हो कर राजभवन के द्वार के बाहर निकल गए।

असंधिमित्रा ने सबकुछ जान लिया। अविचलित युवराज के निकट आ खड़ी हुई।

"तो भावी निकट आ ही पहुंचा स्वामी।"

"हां प्रिय।"

"आपने क्या निर्णय किया है ?"

"निर्णय एक ही है। फिर उसका कोई विकल्प भी नहीं है। कुमार सुसीम सरलता से हमारी स्वाधीनता स्वीकार नही करेंगे ?"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् उनसे युद्ध होगा।"

"युद्ध का अर्थ ?"

"एक ही अर्थ। हमारी विजय। विजय श्री हमी को वरण करेगी। तब हम परम भट्टारक होंगे और तुम मगध साम्राज्य की सम्राज्ञी। कुमार सुसीम के षडयंत्र को हम विफल कर ही श्वांस लगे।"

"और ?"

"और फिर अनेक भयंकर स्थितियाँ निरन्तर आऐंगी, हम भलिभाँति जानते हैं। यह संघर्ष "अथ" है इस कथा का। "इति" हम स्वयं नहीं जानते। न जानना चाहते हैं। हम चरम शिखर पर पहुँचना चाहते हैं प्रिय।"

"और मेरे लिए क्या आदेश होगा स्वामी ?

"आदेश नही, परामर्श । तुम यही रहोगी ।

हमारे लौटने की प्रतीक्षा में हम तुम्हें समारोह पूर्वक पाटिलिपुत्र ले जावेंगे । तुम्हे ही नहीं अपितु देवी शाक्यानी को भी । पुत्र महेन्द्र और संघमित्रा को भी ।"

"जैसा आप चाहे आर्य पुत्र ।"

"युद्ध क्रूर और उपयोगितानिष्ठ होता है प्रिय । हम नहीं चाहते तुम्हे साथ ले जाकर किसी संकट में डालें ।

अर्द्धरात्रि आ पहुँची । रथारूढ़ युवराज अशोक एक शत अश्वारोही सैनिकों और ज्योति शलाकाधारी पुरुषों के साथ द्रुतगति से उज्जयिनी के नगर द्वार से बाहर चल पड़े । पूरी रात्रि और दूसरे दिन सायंकाल तक चलते रहे । पाटलिपुत्र के निकट पहुँचते ही गूढ़-पुरूष नगर की प्राचीर के गुप्त द्वार पर पहुँचा । कूट शब्द कहा और खाई पार करते ही द्वार खुल गया । युवराज के रथ और अश्वारोहियों के प्रवेश को अधिक समय नहीं बीता कि संकेत हुआ । फिर कुमार सुसीम का समवेत जयघोष । युवराज के निपुण अश्वारोही सैनिकों पर कुमार के सैनिक टूट पड़े - किन्तु उनके समक्ष ठहर नही पाए। जयघोष और प्रति जयघोष के बीच खड्ग-प्रहारों, अश्वों की हिनहिनाहटों से घमासान युद्ध आरंभ हो गया । अपने सैनिकों का संचालन करते-करते कुमार सुसीम स्वयं आगे बढ़ आया । सम्मुख आए सैनिकों को खदेड़ते हुए वह तुरन्त युवराज के सम्मुख आ पहुँचा । सावधान कुमार सुसीम ने उच्च स्वर में कहा । फिर अपना खड्ग ताने युवराज के रथ की ओर झपटा । तभी अशोक ने भीषण प्रहार कर दिया और उसका खडग कुमार सुसीम के वक्ष को चीरता हुआ निकल गया । एक आर्तनाद हुआ । कुमार के गिरते ही अवरोध समाप्त हो गया । सुसीम की पराजय और वध का समाचार तुरन्त नगर और राजप्रसाद में फैल गया । आधी घड़ीमें विजेता की भांति युवराज राजप्रसाद के द्वार पर था ।

शेष, रात्रिभयंकर मार काट में कटी । सैनिक विभक्त थे । कौन किसके पक्ष में युद्धरत है पता ही नही चल पाता था । सैनिकों का कोलाहल और घायलों का अति स्वर राजभवन के भीतर अंतः पुर तक जा पहुँचा था । पूरा अंत:पुर अत्यन्त गतिशील था। रूदन और हाहकार का सम्मिलित स्वर कक्षों में गूंज रहा था । ....

"आर्यपुत्र ने प्राणाहुति दे दी । अब मैं किसके लिए जीवित रहूँ ?" विलाप करती हुई वसुमती ने आत्मघात करना चाहा । किसी उन्माद में उन्होने अपने केश खोल डाले। मस्तक का कुँकुम स्वयं पोंछ दिया ।

''ऐसा न कहें स्वामिनी।'' दासी ने तुरन्त वसुमती के हाथ दृढ़ता से पकड़ लिए– '' आप गर्भस्थ शिशु को लेकर किया गया आत्मघात भयानक पाप होगा स्वामिनी।''

''किन्तु ?''

''किन्तु, कुछ अधिक सोचने का समय अब शेष ही नही है। मैने प्रतिहारी मातुल से कहकर पूरी व्यवस्था कर ली है। वह गुप्त द्वार खोलेगा। कपाट खुलते ही आप सुरक्षित निकल जाएंगी। साथ होगे स्वामी के विश्वस्त सैनिक। इसमें तनिक भी त्रुटि नहीं होगी। केवल आप अपना परिधान परिवर्तित कर लें स्वामिनी ताकि अन्य सैनिक पहचान न सकें।''

वसुमती ने अश्रु पोंछ डाले। एक संकल्प मन में जगा। उन्होने तुरन्त रेशमी कूपर्सिक, अंगद, हेम–मेखला और नुपूर आदि आभूषण उतर दिए। वेश बदले वे कक्ष के बाहर आई। खड्गधारी दो सैनिक साथ हो लिए। वे उनके साथ बाहर निकली। प्रतीक्षारत रथ पर आरूढ़ हुई और शीघ्र गंगातट की ओर द्रुत गति से रथ चल पड़ा। सैनिकों का कोलाहल और चीत्कार पीछे छूटता जा रहा था। मुक्ताकाश के शीतल पवन से वसुमती की उत्तप्तता शान्त सी हुई। पश्चिम में सांध्यतारा अबभी प्रकाशित था। आकाश–गंगा की शुभ्रता तिरोहित नहीं हुई थी। उसके क्षीण प्रकाश में प्रवाहयान गंगा का सुदीर्घ पाट अब दृष्टि में आने लगा था। शनैः शनैः भागीरथी के कूल पर स्थित पर्ण कुटियां दिखाई दे रही थी। और आधी घड़ी बीतते–बीतते गंगा की अर्चना और स्तुति का मंद–मंद घोष उच्चरित होने लगा था। इस असमय में भी न जाने किस श्रद्धा से वसुमती ने गंगाभिमुख होकर कर बद्ध प्रणाम किया। फिर नमन की मुद्रा में मन ही मन बाल्मीकि रचित गंगाष्टक का मौन पाठ कर उठीं। मुख से निकला–आर्यपुत्र को सद्गति दो माँ। और मुझे शक्ति। मृत्युपर्यन्त कर्तव्यरत रहूँ। पाप मुक्त रहूँ। तभी पूर्व में सूर्य की प्रथम किरण फूटी। दिन निकला आया। पाटिलीपुत्र का प्रसाद, नगर और भवन उद्यान सब बहुत पीछे छूट गये थे। उनकी धुंधली आकृतियाँ अब बिल्कुल अस्पष्ट हो चुकी थी। निरापद स्थान पर सारथी ने रथ रोका। वसुमती उतर पड़ी। फिर स्वयं अंगुलीय उतार कर सारथी की ओर बढ़ाई।

''यह तुम्हारी पत्नी के लिए है वत्स। अब शीघ्र लौट जाओ। हमारी भनक भी किसी को न मिले, इसका ध्यान रखना।''

''यह आवश्यक तो नहीं माता।'' सारथी ने विनीत होकर कहा।

प्रथम बार ''माँ'' का संबोधन वसुमती को प्रीतिकर लगा। प्रथम बार अपने

दायित्व का आभास हुआ। वे किसी पुलक से नीवीबंध का स्पर्श कर उठीं।

"नहीं वत्स। इसे स्वीकार करो और शीघ्र विदा लो।" वसुमती मुड़ने को हुई कि सारथी ने अंगुलीय अपने मस्तक से लगाई, और रथ का मुख फेर दिया। वह फिर उसी पथ पर दौड़ने लगा! वसुमती निश्चिंत हुई। वे आगे बढ़ी कि एक बौद्ध भिक्षु उधर से आता दिखाई दिया। वसुमती ने प्रणाम किया। आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठाऐ बौद्ध भिक्षु ने मार्ग छोड़ दिया।

"एक विनय है भक्त।" वसुमती ने करबद्ध होते हुए कहा।

"बोलो।"

"मुझे आश्रय चाहिए। आश्रयहीन हूँ मैं अत्यंत दु:खी और विवश।"

"वह तो मैं देख ही रहा हूँ देवी।"

"तुम कुलीन जान पड़ती हो। किसी राजकुल की है न ?"

"आपने ठीक समझा भन्ते। मैं पाटिलिपुत्र के राजप्रासाद से पलायन कर यहां पहुंची हूँ। परम भट्टारक मगध सम्राट की कुलवधू हूँ वत्स।"

"समझ गया। स्थविर महावरुण का मैं शिष्य हूँ। उनका विहार निकट ही है। वे ही आपका समाधान करने के अधिकारी है। मेरे पीछे चलो।"

प्रभात के आगमन के साथ-साथ पाटिलीपुत्र के राजप्रासाद में संघर्ष समाप्त सा हो गया। युवराज अशोक अपने विश्वस्त सैनिकों, अमात्यों के साथ केन्द्रीय कक्ष की ओर बढ़े। द्वार पर महामात्य राधागुप्त को प्रतीक्षारत पाया।

"स्वागत है भावी परम भट्टारक का।

अब भावी शब्द की भी निरर्थकता सिद्ध हुई। महामात्य ने कहा, और उन्हें सादर अन्दर ले आए।

"आपने उचित अवसर पर हमें सूचित कर दिया। इस उपकार को हम कभी न भूलेगें महामात्य।" युवराज अशोक ने अपना उत्तरीय ठीक किया और खड्ग कोंष में रख लिया।

"इसमें उपकृत होने की क्या आवश्यकता है युवराज। यह तो भावी विधान ही था।"

"किन्तु हमें महान दु:ख है, ज्येष्ठ भ्राता श्री ने भ्रातृ-सुलभ व्यवहार करने का अवसर ही नहीं दिया। उनके आक्रमण के प्रतिकार स्वरूप अपनी सुरक्षा में हमारे हाथों उनके प्राण गये। यह अशुभ हुआ।"

"यह आपके शील का द्योतक है युवराज। यदि राज्य को प्रजा के सुख और समृद्धि का ध्यान रहे, विद्रोह की आशंका निर्मूल हो जाती है। अवज्ञा अथवा उद्दंडता तभी जन्म लेते हैं जब असंतोष की ज्वाला प्रजा के हृदय में सुलग उठती है। आपके संकल्प से मैं संतुष्ट हुआ।" महामात्य के वृद्ध कंठ से यह वाणी सुनकर युवराज का मन क्षण भर को पुलक से भर गया। इस घड़ी उन्हें लगा पाटलिपुत्र के इस विशाल राजप्रासाद में वे अकेले नही होंगे। मरणासन्न पिताश्री परम भट्टारक का यदि अंत भी हुआ तो महामात्य राधागुप्त उनके साथ होंगे।

ज्येष्ठ सुसीम से संघर्ष और अंततः अपने ही हाथों उनकी मृत्यु की उद्विग्नता जैसे कम होने लगी।

चार

महामात्य राधागुप्त, बलाधिकृत बंधुल, तथा राजपुरोहित परम भट्टारक के अंतः कक्ष में चिंतामग्न हैं। राजवैद्य ने सम्राट बिन्दुसार का नाड़ी परीक्षण किया। फिर तत्काल कोई औषधि उन्हें पिलाई। किन्तु परम भट्टारक की स्थिति वैसी ही रही। राजवैद्य के मुख पर स्वेद-बिन्दु एवं निराशा का भाव प्रगाढ़ होते चले गऐ। उन्होंने संकेत किया जिसे महामात्य समझ गए। मगध सम्राट् की दृष्टि क्रमशः क्षीण होती चली गई।

"मैं सारे रासायनिक प्रयोग कर चुका महामात्य। परम भट्टारक की चेतना अधिक समय नही रहेगी।" राजवैद्य ने आशा छोड़ दी।" अब जो कुछ करना है, तत्काल कर डालिए। समय शेष नहीं है।"

परम भट्टारक के मुख पर अब एक सौम्य भाव उदय हुआ। सारी अशांतता और व्याकुलता जैसे जाती रही। "कर्म निश्शेष हुए वे क्षीण स्वर में बोले।

"किन्तु अभी एक महत कार्य शेष है महाराज। यदि परम भट्टारक धर्मरक्षक प्रजापालक उचित समझें, मगध-साम्राज्य का दायित्व युवराज को तत्काल सौंप कर

चिंतामुक्त हों।'' राजपुरोहित ने करबद्ध होकर निवेदन किया।

''कौन युवराज ? कहां है वे वत्स ?'' परम भट्टारक की दृष्टि कक्ष में घूमी। पुनः उन्होने नेत्र मींच लिए।

''युवराज उपस्थित है स्वामी'' कहकर महामात्य ने परम भट्टारक को सहारा देकर उठाया। वे अर्धलेटे से बैठ गए।''

युवराज अशोक तुरन्त सम्मुख आए। राजपुरोहित ने थाल परम भट्टारक के आगे किया। किसी प्रकार महाराज ने युवराज के मस्तक पर विजय-तिलक अंकित किया, अक्षय लगाए, और प्रकंपित हाथों से राजमुकुट उनके मस्तक पर रख दिया।

मगध की सार्वभौमिकता अक्षुण्ण रखना वत्स ! चक्रवर्ती भव। किसी प्रकार अस्फुट स्वरों में उच्चारित करते हुए परमभट्टारक पुनः शैया पर लेट गए। फिर उन्होनें पलक नहीं खोले। तत्काल राजपुरोहित ने गंगाजल परम भट्टारक के मुख में डाला किन्तु वह ग्रीवा से नीचे नहीं पहुँच पाया। अन्तिम बार ओम् शब्द का महाराज ने उच्चार किया। फिर निष्कम्प युगल हाथ प्रार्थना की मुद्रा में जुड़ रहे। किसी अतिरिक्त शक्ति जैसे वे लगा रहे थे। और दूसरे ही क्षण प्राण-विधुत नभ मंडल की मुक्त धाराओं में विलीन हो गई। चेतना शून्य शरीर एक और लुढ़क गया। सारा समुदाय अन्तर्नाद कर उठा। राजपुरोहित ने महाराज के खुले नेत्र बलपूर्वक बन्द कर दिये। 'शिव-शिव' कहकर वे हठ गए। युवराज ने मस्तक से राजमुकूट उतार कर अविलम्ब अपने पिता के चरणों में रख दिया, फिर निःशब्द रहे। उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाह बह निकला।

तुरन्त महाराजाधिराज के निधन का समाचार राजप्रासाद में फैल गया। राजकुल गहन विषाद में डूब गया। रानियॉ, कुलवधुऐं आत्मीय-आत्मयगण विलाप कर उठे। मगध साम्राज्य का ध्वज झुका दिया गया। परम भट्टारक के निधन एवं युवराज के राज्यारोहण की घोषणा साथ-साथ कर दी गई।

मनस्ताप से युवराज अशोक अत्यंत दुःखी थे। उनकी वाणी मूक थी। उनका वेदना-विदीर्ण मुख और सजल नेत्र देखकर महामात्य राधागुप्त विचलित हुए। पर्याप्त चिंतन कर वे उठे।

युवराज के निकट आए- ''परम भट्टारक का विधिवत अन्तिम संस्कार हो चुका। मगध-साम्राज्य का सिंहासन अपने स्वामी की प्रतीक्षा में है। राजकर्म आरंभ करें।''

युवराज अशोक, और अब परम भट्टारक ने महामात्य की बात ध्यान से सुनी। वे दृढ़ स्वर में बोले- '' मैं जानता था महामात्य. मेरा सिंहासनारूढ़ होना इतना सरल

न था। रक्त बहेगा, यह भी जानता था। किन्तु भ्राता श्री सुसीम ने अपने प्राण व्यर्थ ही खोऐ। यदि वे मेरी अधीनता मान जाते तो कदाचित मैं उनकी ज्येष्ठता को स्वीकार कर कोई आदरणीय पद उन्हें देता, गुरुवर दायित्व सौंपता किन्तु वह अवसर मुझे उन्होंने दिया ही नहीं।''

''यह कैसे संभव होता जबकि विधि का विधान कुछ और ही चाहता था स्वामी।''

''एक और विषाद हमें दु:खी करता है। आर्या वसुमती यदि राजप्रासाद में रहती तो हम उनकी पूर्ण सुरक्षा करते, उनसे अपने कृत्य की क्षमा मांगते। किन्तु उनकी खोज के सारे प्रयत्न निष्फल हुऐ।

''वह प्रसंग भूल जाऐं महाराज। राज्यारोहण के महोत्सव की तैयारी आरंभ हो चुकी है। यदि अनुमति हो मंत्री परिषद की सभा बुलाली जाए। प्रजा जन राज्यारोहण का उत्सव देखने को उत्सुक हैं।''

''मंत्री-परिषद की आपातकालीन सभा अवश्य आयोजित करलें महामात्य। महोत्सव की बात इस समय रहने दें। हम पहले आमात्य, सेनापति, तथा विभागाध्यक्षों से और घनिष्ठ होना चाहते हैं। फिर हमारी प्राथमिकताऐं अलग प्रकार की होगी। किन्तु प्रशासन का आधार पितामह की शासन व्यवस्था ही रहेगा। सम्पूर्ण प्रजा हमें पुत्रवत् प्रिय रहेगी, और उनका व्यक्तिगत हित हमारा हित होगा। वे हमारे सदृश्य ही मानव हैं यह हम नहीं भूलेंगे और मानवोचित व्यवहार करने के लिए हम संकल्पशील रहेंगे।

''आपका कथन सत्य है महाराज। आपके आदेश का पालन होगा। जिस मर्यादा का निर्वाह आपके पूर्वज करते आए है, वह मर्यादा अटूट रहेगी। आपका अभिप्राय मंत्री परिषद का भी अभिप्राय होगा, इस और से आप आश्वस्त रहें।''

''हम आश्वस्त हैं महामात्य।'' कहकर युवराज अशोक पीठ से उठ खड़े हुए। मंत्रणा कक्ष से मंद-गति से बाहर आ गए। पीछे-पीछे महामात्य थे। ठीक इसी समय द्वारपाल ने गजर-बजाकर मध्य रात्रि बीतने की सूचना दी।

स्थविर महावरुण के संघाराम का वह एकांत कक्ष। पृथ्वी पर शीतलपाटी बिछाकर लेटी है राजप्रासाद के विरल होकर वसुमती। चिंता में डूबी हुई। आर्यपुत्र सुसीम के साथ सुख-पूर्वक बिताए वे दिन, भोग की सामग्रियों से परिपूर्ण वह राज प्रासाद का अंत:पुर, सेवक-सेविकाओं से घिरा हुआ आवास, गतिशील जीवंतता। और फिर आर्यपुत्र सुसीम की उसी के अनुज द्वारा हत्या। फिर राजप्रासाद से प्राण बचाने

के यह छद्म वेशी उपक्रम ।

स्थविर महावरुण ने भिक्षु सुमति से वसुमती की पूरी कथा सुनी थी । और वह मूक अश्रू-प्रवाहित करती हुई उनके संमुख बैठी रही थी । दु:ख से कातर । वेदना शान्त ही नहीं हो रही थी । वसुमती के मन का सम्पूर्ण रहस्य समझ गए थे महावरुण । फिर धीर-गंभीर स्वर में वे कह उठे थे- मनुष्य भोक्ता ही नहीं कर्ता भी है । अपने आस पास स्वयं वही अपना विधान रचता है । उसके लिए जन्म भी दु:ख है, जरा भी दु:ख है, और मरण भी दु:ख है । उसके दु:ख का कारण तृष्णा है । काम, भय और विभव की यही तृष्णा मनुष्य के दु:ख के मूल में है । अप्रिय का संयोग पाकर भी वह दु:खी होता है, प्रिय से वियोग भी उसके दु:ख का कारण बनता हैं । इसी दु:ख के निरोध से तृष्णा का अन्त संभव हैं अत: तथागत का दु:ख निरोधगामी मार्ग का अनुसरण करो। जो कुछ कठिन होता है, हमारा अपना कर्मफल है, यह एक सुनिश्चित व्यवस्था का परिणाम ही हैं ।

वसुमती एकाग्रता से सुनती रही । विश्रृंखलित चित्तवृतियां शान्त होने लगी। अंत-करण की कालिमा जैसे शनै: शनै: तिरोहित हो रही थी । प्रथम बार उसने स्थविर महावरुण के मुख की और देखा । उनके मुख के आस पास बलयाकृ ति प्रभा-मंडल वसुमती को दिखाई दिया । उसकी शिथिल इंद्रिया नई क्षमता से पूर्ण हो उठीं ।

''इस जरा, मरण, भव तृष्णा, विभव-तृष्णा से मुक्ति का उपाय क्या है प्रभु ?'' किसी अबोध शिशु सी बनकर वसुमति ने करबद्ध होकर पूछा ।''

''बुद्धं शरणं गच्छ ।'' स्थविर महावरूण ने नेत्र मूंदे हुए कहा । फिर वे निर्वाक हो गए जैसे अपनी बाह्य वृत्तियों को उन्होंनं सहज होकर समेट लिया हो ।

वसुमति अपने आसन से उठीं । भिक्षु सुमति ने मार्ग प्रशास्त्र किया । वे शनै: शनै: कक्ष में लौट आई ।

यह लोक नित्य है अथवा अनित्य ? जीव और शरीर की सत्ता पृथक-पृथक हैं अथवा वे एक ही है ? आत्मा-आत्मा समान हैं । फिर सारे कलह, विग्रह, और विवाद किसलिए । एक दूसरे प्र आक्रमण, प्रत्याक्रमण, जय-विजय, आदि क्यों ? वह दु:ख निरोधगामी मार्ग कौनसा है जिसकी ओर स्थविर महावरुण ने संकेत किया है ?'

निर्णय कर रही हैं वसुमती । वह स्थविर महावरूण के समीप ही रहेगी । कितने निस्पृह और निर्लिप्त हैं स्थविर । किस निरपेक्ष भाव पे वे उन गूढ़ तत्वों को बता रहे थे । निर्ग्रन्थ हो जाने का मार्ग क्या यही है ? और परम भट्टारक मगधाधिपति का जो

वंशज मुझमें गर्भस्थ है, उसका क्या होगा ? आर्यपुत्र सुसीम को परम भट्टारक न अपना उत्तराधिकारी बना सके, और न उसके प्राणों की रक्षा ही कर पाए। वे परम भट्टारक जिनके पिताश्री परम भट्टारक महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त ने महाशक्ति शाली नन्द राजवंश का पूर्ण विनाश कर शक्तिशाली मगध साम्राज्य की नींव डाली उत्तर में हिमालय से सुदूर दक्षिणांचल तक अपनी प्रभुता स्थापित की। महाराष्ट्र, कोकण, आन्ध्र और कर्नाटक के शासकों ने उन्हे अपना अधिपति स्वीकार किया। उत्तर पश्चिम में काबुल, हेरात, करंधठ और बलूचिस्तान तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया उनके ही पुत्र आर्यपुत्र सुसीम का कैसा करुण अंत ? उस सारे वैभव को रोगी शरीर पाकर परम भट्टारक भोग ही न सके न अपने ज्येष्ठ पुत्र आर्यपुत्र को उसका अधिकारी बनाने में असफल रहे।

उस दिन किस अधिकार से आर्यपुत्र परम भट्टारक की सेवा में पहुँचे थे। ज्येष्ठ होने के नाते अपना उत्ताधिकार मांगा था। वह प्रश्न अनिर्णित ही रह गया था। और वे रिक्त हाथों लौट आऐ थे। उन्होने अनुज अशोक को अपने मार्ग से बलपूर्वक हटाने की बात कही थी और मैने अतिचार और दुस्साहस का प्रश्न खड़ाकर दिया था किन्तु वे नहीं माने थे। राजनीति में कोई किसी का तात नही होता और न किसी का पुत्र-उन्होने अंतिम बात कहकर वह प्रंसग ही समाप्त कर दिया था। जैसे और कोई विकल्प शेष था ही नही।

दूसरे ही दिन वसुमती स्थविर महावरूण के सम्मुख उपस्थित हुई। मन पुनः विचलित हो उठा था। वेदना लौट आई थी ? स्थविर स्वयं में खोए चिंतन में मग्न थे। वे शान्त और मौन अर्न्तमुखी से दिखाई दे रहे थे। उनकी मुख मुद्रा के दर्शन मात्र से जैसे वसुमती का आवेश शान्त होने लगा। आधी घड़ी इसी प्रकार व्यतीत हो गई। स्थविर महावरुण ने नेत्र खोले। सम्मुख वसुमती को आसन पर बैठा हुआ पाया। "मन फिर उद्विग्न हो उठा था आचार्य।" वसुमती ने कहा।

"तुम्हें प्रतीक्षा करनी होगी गर्भस्थ शिशु के आगमन की। प्रथम मातृत्व के उस दायित्व को वहन करो। उसे पाकर जिस ममत्व का आविर्भाव हो उसे समष्टि में बांटना। तुम्हारा वही पुत्र किसी महान परिवर्तन का कारक सिद्ध होगा। यह दायित्व मुझ पर छोड़ दो।" कहकर स्थविर महावरुण फिर मौन हो गए। आचार्य श्री को प्रणाम कर वसुमती उठ खड़ी हुई। एक नया संकल्प पुनः मन में उदय हुआ। सारे प्रश्नों का समाधान उसका गर्भस्थ शिशु के जन्म के बाद ही होगा। जिस बालक का मुख आर्यपुत्र

देख भी न पाए, जिसके गर्भ में आते ही उसका सौभाग्य सदा के लिए खंडित हो गया, उसे वह गर्भ में पूर्ण आकार देगी। पुरातन का क्षय और नवीन की सृष्टि कदाचित् सृष्टि का यही नियम है, जो शाश्वत हैं।

"मुझे संघ प्रवेश की अनुमति दे आचार्य" वसुमती ने कहा। स्थविर महावरुण ने वसुमती को प्रकृतिस्थ जानकर कहा- "तुम राजकुल की अवश्य हो भन्ते। किन्तु संघ प्रवेश के पूर्व जानना आवश्यक है कि उसके लिए सबके द्वार समान रूप से खुले है। यहां जाति, वर्ण, स्त्री-पुरुष का कोई भेद नही है। और यह प्रश्न तुम्हारे मातृत्व ग्रहण के पश्चात् ही उठेगा। तबतक शान्त चित होकर विश्राम करो, अपना समय दीन-दु:खी की सेवामें लगाओ अहर्निश चित्त शुद्धि की प्रार्थना करो। परमार्थ और पर-सेवा से मन अवश्य पवित्र होता हैं।"

यह सब सुनकर वसुमती के नेत्रों में जल भर आया।

"बुद्ध शरणं गच्छ" कहते हुए स्थविर महावरुण उठ खड़े हुए और वसुमति के प्रणाम के उत्तर में वरद-हस्त मुद्रा में वे मौन ही बाहर निकल गए।

वसुमती ने अपने कक्ष में जाकर मुख प्रक्षालन किया और फिर बाहर आई। संघाराम के कार्यों में हाथ बंटाने के लिए वे सक्रिय हो उठी।

वह दिन ऐसी ही बीत गया।

भिक्षु सुमति पाटलिपुत्र गए थे। आज ही लौटे हैं। वसुमती उससे मिलने को व्यग्र हो उठी। उसे खोजती हुई वे पहुँच ही गई।

"नगर का क्या समाचार है भंते।" उन्होने प्रश्न किया।"

"सुना है परम भट्टारक ने प्राण त्याग दिए हैं। उसके पूर्व युवराज अशोक का राजतिलक कर राजमुकुट अपने हाथों उन्होने उनके शीश पर पहनाया। युवराज के परम भट्टारक बनने की घोषणा कर दीं गई है किन्तु राज्यारोहण का महोत्सव होना अभी शेष है।"

"और आर्यपुत्र के सैनिकों का क्या हुआ ? प्रजा की प्रतिक्रिया क्या हुई ?"

"जिन्होने क्षमादान मांगा उन्हे क्षमा मिलने दी। शेष बन्दी बना लिए गये। महामात्य बलाधिकृत, आमात्य, मंत्री-परिषद के सभी सदस्यों ने युवराज को परम भट्टारक स्वीकार कर लिया है। प्रजा संतुष्ट है। पाटिलीपुत्र पूर्णतया शान्त है। युवराज के विवेक और दृढ़ता की सर्वत्र प्रशंसा है।"

तो क्या आर्यपुत्र की घटना को सब भूल गए ? युवराज का सभी ने अभिनन्दन

किया ? शेष अनुज, राजकुल के सभी सदस्य युवराज के ही पक्षधर होंगे ?

कदाचित यही मनुष्य की विडंबना है। उसकी विमति यही है। नीति और अनीति, करणीय और अकरणीय, पाप और पुण्य इन सब की सीमा रेखाऐं समर्थ के सम्मुख समाप्त हो जाती हैं। भले बुरे की पहचान ही नहीं रहती। शक्ति के सामने बलात् मस्तक झुक जाते है अथवा झुका दिए जाते हैं।

न जाने कबतक ग्सुमक्ति विचारों में खोई रही। संध्या कब प्रगाढ़ हो गई पता ही नहीं चला। रात्रि का आगमन होते होते वे अपने कक्ष में लौट आई। प्रकाश की व्यवस्था हेतु दीप जला दिया। संघाराम के प्रागंण में संध्यार्चन और ध्यान हेतु भिक्षुक एकत्रित होने लगे।

पाँच

असंधिमित्रा के लिए उज्जयिनी के राजभवन में बीतते वे दिन चिंता और उद्विनता भरे थे। कदाचित कोई प्रभात ऐसा उदय हुआ हो, जिस दिन वे पाटलीपुत्र से किसी संदेश अथवा समाचार की बाट न जोहती हों। मगध-साम्राज्य की राजधानी पाटली पुत्र जिस उथल-पुथल और अस्थिरता के संक्रमण काल से गुजर रहा था, वह चिंता का विषय था ही। किन्तु रह-रह कर आर्यपुत्र और युवराज के वे शब्द और उसकी अनुगूंज मुखर हो उठती थी-''युद्ध का एक ही अर्थ, हमारी विजय। विजय श्री हमीं को वरण करेगी। तब हम परम भट्टारक होंगे, और तुम मगध साम्राज्य की साम्राज्ञी।'' कैसा आत्म विश्वास और किस अनागत की उपलब्धि का संकल्प था वह ? जैसे इसके विपरीत कुछ संभव ही नहीं।

अंततः बहुप्रतीक्षित समय उपस्थित हो ही गया। नगर-पौर अभयदत्त और दंडपाल दुर्जन ने आकर सूचना दी, युवराज परम भट्टारक घोषित हो चुके हैं। महाराज बिन्दुसार स्वर्गवासी हुए। साम्राज्ञी असंधिमित्रा को लेने रथ और सैन्यदल की एक टुकड़ी नगर परिसर में प्रवेश कर चुके हैं।

इसका अर्थ, आर्यपुत्र का स्वप्न पूरा हुआ। जीवन का एक नया द्वार खुला है। नए उत्तरदायित्व और गरिमा का मिला-जुला बोध असंधिमित्रा में जागृत हो रहा है। जैसे वाणी को अर्थ मिलता है, कदाचित् जीवन को वैसा ही एक नया अर्थ मिलेगा। किन्तु वह अर्थ कितना बन सकेगा, कौन जानता है ?

नगर-पौर साम्राज्ञी के जाने की व्यवस्था में लग गए हैं। असंधिमित्रा उज्जयिनी शीध्र छोड़ देगी। वह उज्जयिनी जिसने आर्यपुत्र और उन्हें अपार स्नेह दिया है। उनके दस वर्षीय जीवन का सबसे सुन्दर पक्ष है उज्जयिनी। किन्तु वर्तमान की संतुष्टि का अर्थ यह तो नहीं कि उच्चतर जीवन जीने की कल्पना ही लुप्त हो जाए। प्रजा का अनुराग बना रहना चाहिए। विचार रही है असंधिमित्रा। यह अनुराग ही तो जीवन का सार त्तत्व है। व्यक्ति से नहीं समष्टि से प्रेम, यही है संस्कृतियों का निष्कर्ष।

राजभवन की सेवक-सेविकाऐं उदास हैं। असंधिमित्रा मगध की साम्राज्ञी बन गई यह भाव उन्हे सुखी अवश्य बनाता है, किन्तु कल ही यह भवन उनके बिना रिक्त हो जाएगा। उस शून्य को कौन भरेगा ? मगध से मंत्री परिषद सम्मत राजकीय आदेश प्राप्त हुआ है राजुक, वल्लभ अंवती-रथ के कार्यकारी प्रदेशाध्यक्ष होंगे। महामात्र का पद भी वे ही सम्हालेगे। नगर-पौर और दंड-पाल प्रशासन में उनकी पूरी सहायता करेंगे। वैकल्पिक व्यवस्वथा होने तक नगर शासन के अतिरिक्त सम्पूर्ण मंडल का कार्य-भार उन पर ही रहेगा। यही वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति की क्षमता का परिचय मिलता है। सफलता का अर्थ है, समय की कसौटी पर खरा उतरना। परमभट्टारक ने उन्हें अवसर दिया है, वे अपनी क्षमताऐं सिद्ध करें। विश्वास और आस्था जीवन के यही उत्स हैं। विश्वास अपने आप में और आस्था अपनी पावन मातृभूमि के प्रति।

सैनिकों से रक्षित रथ साम्राज्ञी असंधिमित्रा को लेकर अपने गतंव्य की और बढ़ रहा हैं। उज्जयिनी के भवन, मंदिरो के शिखर महाकाल-वन, और विध्यंवासिनी का देवी-मन्दिर पीछे छूट गए हैं। राजपथ से शीघ्र की क्षीण सी रेखा अब भी दिखाई दे रही है। रह रह कर साम्राज्ञी की दृष्टि में वह विदा दृश्य कल्पना में आ रहा है। राजभवन से विदा के समय पंक्तियों में पथ के दोनों और खड़े स्त्री-पुरुष, उनका आर्यपुत्र और असंधिमित्रा के लिए जयघोष, अश्रूपूरित आँखों में झांकना वह स्नेहिल भाव। उन दोनो के प्रति निष्ठा के ही सूचक थे।

ठीक वैसा ही रथ सैनिको के साथ विदिशा गया था, महादेवी शाक्यानी और कुमार महेन्द्र, पुत्री संघमित्रा को लिवा लाने के लिए। किन्तु शाक्यानी ने परम भट्टारक का

अनुरोध अस्वीकार कर विदिशा में रहने का निश्चय किया। उत्तर में शाक्यानी ने परम भट्टारक को पत्र लिख दिया था-

"पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा बड़े हो जाए तब उन्हे आपको सौंपकर आर्यपुत्र आत्म-कल्याण की साधना में लीन हो जाना चाहती हूँ। आप अनुमति दें स्वामित्व त्याग की तो दीक्षा लेने का निर्णय करूँ। मेरे कारण जो आपको मनः ताप होगा उसके लिए कर बद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ।"

और वह रथ रिक्त ही पाटलिपुत्र लौट गया था। शाक्यानी के इस निर्णय से श्रेष्ठी भद्रसेन एवं सम्पूर्ण जन-समुदाय स्तभिंत रह गया। जिन राजसी सुख सुविधाओं और भोग के लिए साधारण जन लालायित रहते हैं, और जो दुष्प्राप्य हैं, उन्हे कदाचित् ही कोई त्यागेगा। श्रेष्ठी भद्रसेन, श्रेष्ठी कुल के अन्य स्वजनो ने शाक्यानी को समझाना चाहा था किन्तु वे अपने निर्णय पर अडिग रही थीं।

भिक्षु आलिन्द ने कहा था भौतिक पदार्थों के परित्याग से ही मनुष्य अपने लिए सच्चा सुख एवं शान्ति अर्जित कर सकता है। भोग लिप्सा एक ऐसा इंद्रजाल है जो उसे मोहता है, किन्तु उसकी परिणति दुखः एवं अशान्ति ही है। यदि सच्चे आनन्द का मार्ग खोजना है तो इनका त्याग करो। तृष्णा का बुझ जाना, आस्रब का न रहना ही निर्वाण है।

"पाटलि पुत्र जाने का अर्थ है भोतिक पदार्थों की स्वीकृति एवं भोग लिप्सा के उसी इन्द्रजाल में फसना। फिर दुखः और अशान्ति से मुक्ति कहां मिलेगी ? तृष्णा कहां बुझेगी ? आस्रब रहेगा ही।"

"आर्यपुत्र के विषय में सोचती हूँ तो लगता है। वे ही समस्त चिंताओं के केन्द्र हैं। किन्तु व्यक्ति-संदर्भ और व्यक्ति विशेष तक अपने चिंतन को सीमित कर लेने का अर्थ लोक-कल्याण के मार्ग से विरत हो जाना नहीं है ? मैं आर्यपुत्र के प्रति नतमस्तक हूँ, किन्तु अपनी निवृति के लिए दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं जिसका अवलम्ब कर सकूं।

"पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा के विषय में सोचती हूँ तो लगता है बंधन और मुक्ति कर्म और नैष्कर्म प्रवृति और निवृत्ति इन द्वंद्वो से कभी मुक्ति संभव ही नहीं है। जैसे वे मेरे विपक्ष में खड़े हैं। जैसे मैंने ही अपनी-चिन्मुखी आकांक्षाओं के विरुद्ध स्वयं एक संसार रचा है। इस वंचना का प्रतिकार कैसे हो, यही मेरी दुविधा है आर्यपुत्र।"

"फिर सत्य क्या है ? चित को राग से मुक्त कैसे करूं ? वह राग जिससे

अन्तर्निहित वासनाऐं जन्म लेती हैं, जिसके कारण पुनः पुनः जन्म लेना, पड़ता है, जो सबसे बड़े दुखः का कारण है, उस राग का समूलोन्मूलन करने का मार्ग कौनसा है? मेरा स्वधर्म और मेरा स्वभाव कौनसा है ?''

''मैं जानती हूँ आर्यपुत्र । मेरा पत्र पाकर आपको आघात तो लगेगा ही । किन्तु आप अकेले तो नहीं है । मैं ठहरी श्रेष्ठी-कन्या राजकुल से मेरा दूर का भी संबंध नहीं था। ज्येष्ठी का पद आप असंधिमित्रा को ही देगे । वे राजकुमारी हैं । राजकुल की मर्यादा, उसकी गरिमा और तदनुकूल आचरण में वे ही विज्ञ हैं । अतः अग्रमहिषी आप उन्हें ही बनाएंगे । और फिर, सुनती हूँ आर्या पदमावती का भी आप वरण कर चुके हैं । मगध साम्राट के राजप्रसाद में अग्रमहिषी और अन्य राजमहिषियों का होना अस्वाभाविक भी नही हैं । हमारे पुरुष-प्रधान समाज में राजा का बहुपत्नीक होना एक प्रचलित परम्परा है । फिर इन विवाहों का राजनीतिक दृष्टिकोण भी है । मुझे आशा है वे आपको सुखी बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहेंगी ।''

संभवतः मैं रथ रिक्त लौटाने की धृष्टता नही करती, किन्तु जिस संस्कृति में मैं पली ही नही, उसे चिर-काल के लिए अंगीकार करने में मुझे भय लगता है । कब मैं अपराध कर बैठूं ? किस दोष की भागी बन जाऊँ ? यह संकोच और उसकी आशंका सदा रहेगी । मैं कबतक स्वयं को निरपेक्ष रख पाऊँगी ? ....

''आपके दोनो बच्चे अत्यन्त प्रिय हैं । वे मेरे पास आपकी धरोहर हैं । मैं उन्हें आपको सौंपकर निर्द्वन्द्व हो जाना चाहती हूँ, जिससे किसी अनागत की उपलब्धि के लिए स्वयं को मानसिक रूप से उद्यत कर सकूँ । आज लगता है मुझे, जो कुछ अबतक प्राप्त हुआ, उसकी मात्र में दृष्टा थी । अतः निरपेक्ष हो जाने की प्रवृति मुझमें जागती रही हैं । यह आत्म-बोध आपकी अनुपस्थिति में और भी प्रगाढ़ होता चला गया । तथापि मैं आप पर कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगा रही हूँ । यदि कोई अपराध हुआ भी है, तो मुझसे ही हुआ है । कदाचित् भिक्षु अलिंद से यदि साक्षात्कार न होता, यदि उनकी वाणी-मेरे मर्म को नहीं छूती, कदाचित बिना एक क्षण खोए, बिना एक शब्द व्यय किये मैं आपके पास चली आती । आप जब मुझ पर मुग्ध हुए थे, वे क्षण और उसकी प्रतीति कभी भूल पाऊँगी ?''

द्रुतगति से एक अश्वारोही ने नगर द्वार में प्रवेश किया । राजप्रसाद में समाचार पहुंचा साम्राज्ञी असंधिमित्रा का रथ पाटलिपुत्र के सन्निकट है । आधी घड़ी बीतते-बीतते सम्पूर्ण राजधानी में नगरवासयों ने भी सुना । चिरकाल के पश्चात एक मंगलमय

क्षण उपस्थित हुआ था नागरिकों के लिए। राजपथ पर देखते ही देखते भीड़ बढ़ने लगी। अट्टालिकाओं, अलिन्दो से कुलवधुऐ, वृद्धाऐं साम्राज्ञी को छवि पाने उमड़ आई थी। जनजीवन कुछ पलों के लिए रुक सा गया। समय बीतते बीतते विशाल राज प्रासाद के मुख्य द्वार पर रथ आ पहुंचा। प्रज्जवलित दीप भरे पूर्ण कुंभ उठाए दो स्त्रियां आगे बढ़ी। द्वार के तोरण द्वार पर पिप्पणी और नगाड़े ने मंगल ध्वनि आरंभ कर दी। राजमहिषी पदमावती ने घृत-दीप प्रज्जवलित, अगरू गंध सुवासित थाल सेविका से लेकर रथ से उतरते ही असंधिमित्रा की आरती उतारी। अर्ध्य दिया। मंगल गान करती स्त्रियों ने पुष्प और धांन की खीले अंजुरी में भरभर कर बिखेरी। अब राज पुरोहित आगे बढ़े। आम्रपत्रों से जल सिंचित कर स्वस्तिवाचन आरंभ किया। फिर पुष्पहार पहनाकर नारियल साम्राज्ञी असंघिमित्रा के हाथों पर रख दिया। राजपुरोहित को प्रणाम कर वे आगे बढ़ी। अन्तःपुर नवीन उत्साह से भर उठा।

अपने सुसज्जित कक्ष में बैठी हैं साम्राज्ञी असंघिमित्रा। सामने ही पीठ पर आसीन है राजमहिषी पदमावती। अविकसित कमल से विशाल भाव-प्रवर नेत्र, लम्बी बरोनियों से ढके जो कानों को छू रही थी। अरुण्यक मुख पर एक परम सौम्य भाव।

'प्रवास में थक गई होंगी दीदी। तनिक विश्राम कीजिए। स्वामी आखेट से रात्रि तक लौटेगे। तभी भेंट उनसे होगी।"

"नहीं ऐसी नहीं थकी"-राजमहिषी पदमावती की बात सुनकर असंधिमित्रा ने कहा। पद्मावती उन्हे सौंदर्य और सौम्यता की सजीव मूर्ति-सी लगी।"

"तथापि, आज म्लान दीख रही है। सारी चिंताऐ छोड़कर विश्राम करे।"

"तुम सब यहां हो तो मुझे भला क्यों चिंता होने लगी ?"

असंधिमित्रा ने अनुरागवश पद्मावती को अपने अंक में भर लिया।

"तुम कितनी सुन्दर हो ? हठात असंधिमित्रा कह उठी।"

"आप जितनी नही।" दुलार से पदमावती ने असंधिमित्रा के अंक में अपना मुख छिपा ही लिया।"

"प्रसन्न हो इस राज प्रासाद में ?" असंधिमित्रा ने पूछा। "महापराक्रमी वीर श्रेष्ठ आर्यपुत्र को पति रूप में पाकर कौन प्रसन्न नही होगा ?" कहकर सीधे सीधे पद्मावती ने असंधिमित्रा की आंखों में ताका।

"तुमने ठीक ही कहा। आर्यपुत्र हैं ही ऐसे। जिस पर प्रसन्न होते हैं, प्रसन्न होते ही चले जाते हैं। और फिर उन्हें पाकर कौन नारी परितुष्ट नहीं होगी ?"

सेविका आकर दीपाघरों पर दीप जला गई। तभी-द्वार पर चारण ने तूर्य बजाकर परम भट्टारक के आगमन की सूचना दी-अन्य चारण ने उच्च स्वर में पुकार कर कहा- सावधान। परम भट्टारक, प्रजापालक, धर्मावतार महाराज राज-प्रसाद में पधार रहे हैं।"

पद्मावती ने स्नेह पूर्वक अपना हाथ असंधिमित्रा के हाथों से मुक्त किया। वे कुछ मुस्कराई और जाते-जाते बोली-"अब अधिक प्रतीक्षा नहीं करना पड़ेगी दीदी। देवी शाक्यानी नहीं आई, आप तो आ गई।"

"हाँ शाक्यानी महादेवी का रथ रिक्त ही लौट आया।" एक दीर्घ निःश्वास लेकर असंधिमित्रा ने कहा।

"राज प्रासाद में अपवाद फैला है-आर्य शाक्यानी जिन शासन में दीक्षित होना चाहती है। आर्यपुत्र से वे इसकी अनुमति लेंगी।" पद्मावती ने अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा। फिर वे असंधिमित्रा के कक्ष से बाहर हो गई।

परम भट्टारक ने स्नानागार में जाकर स्नान किया, कंचुकी ने धुले स्वच्छ वस्त्र, सुगंधिपूर्ण और अनुलेपन यथास्थान रख दिये। स्नानोपरान्त वस्त्र परिवर्तन और प्रसाधन कर परम भट्टारक बाहर निकले। दासी ने स्वर्ण जड़ित दर्पण सन्मुख कर दिया। परम भट्टारक ने कंघी से केश व्वयवस्थित किए। फिर दासी के दिखाए मार्ग से वे असंधिमित्रा के कक्ष में पहुँचे। दासी ने आदर पूर्वक पट हटा दिया और स्वयं कक्ष के बाहर निकल आई।

परम भट्टारक की आहट सुन असंधिमित्रा पीठिका से उठीं। खिली हुई माधवी पुष्पों का हार परम भट्टारक के गले में पहनाया और अभ्यर्थना में किंचित नत हुई, किन्तु परम भट्टारक ने कंधो से उन्हे उठाकर आलिंगन में ले लिया। असंधिमित्रा के मुख पर मुस्कान झलक आई जिससे वे अधिक सुन्दर लगी।

"मार्ग में कष्ट तो नही हुआ प्रिये ?

परम भट्टारक ने पूछा।

"नहीं आर्यपुत्र। अपनी कहें, कैसे दिन बीते ?"

"तुम्हें सूचना नही मिली थी ?"

"मिलती रही थी। मंगल क्षेम के समाचार भी मिले थे। और भी समाचार थे जो दुःखी करते थे। प्रासादों और अंतः पुरों में ऐसे समाचारों की कमी तो नही होती आर्यपुत्र।"

''तुम स्वयं राजकुल की हो। अतः राज प्रासादो और अंतः पुरों की अभिसंधियाँ तथा त्रासादियों से कदाचित परिचित ही हो। पाटलिपुत्र का राज प्रासाद उसका अपवाद भी नही है।

''जानती हूँ आर्य-पुत्र। निश्चय ही जानती हूँ।''

''कल आश्विन शुक्ला प्रतिपदा है। नवरात्रि आंरभ।

देवार्चन के पश्चात् हम दोनों को एक विधि सम्पन्न करनी होगी।

''कौनसी विधि स्वामी ?''

''कल मगध साम्राज्य की अग्रमहिषी के पद पर तुम आसीन होओगी। विधिवत पूजन के पश्चात् इसकी घोषणा होगी।

''यह आपकी महती कृपा है। दासी वैसे ही सुखी है आर्यपुत्र।''

असंधिमित्रा ने परम भट्टारक के चरण स्पर्श करना चाहे किन्तु परम भट्टारक ने पुनः असंधिमित्रा को प्रगाढ़ आलिंगन में ले लिया। फिर कंधे का आश्रय देते हुऐ वे उन्हें अपनी शैया तक लाए। तभी द्वारपाल ने गजर बजाकर मध्य रात्रि की सूचना दी।

छः

पाटली पुत्र का सभागार। मंत्री परिषद की आवश्यक बैठक आयोजित है। परम भट्टारक अपने सिंहासन पर बैठे हैं। महामात्य राधागुप्त, महाबलाधिकृत बंधुल एवं द्विज आमात्य सुबंध के अतिरिक्त अन्य सभी आमात्य उपस्थित हैं। दीर्घ मंत्रणा चल रही है। परम भट्टारक तनिक उत्तेजित दिखाई दे रहे हैं।

''राज्यारोहण समारोह की हमें तनिक भी चिंता नहीं है महामात्य। वह सब होता

रहेगा। किन्तु तत्काल विचारणीय प्रश्न है मगध साम्राज्य की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने का। पूर्व परम भट्टारक और पिताश्री दीर्घकाल से अस्वस्थ रहे हैं। अतः प्रशासन में शैथिल्य आया है। जो क्षत्रय तथा राजाध्यक्ष मगध साम्राज्य के आधीन थे और जिसकी नींव पितामह सम्राट चंद्रगुप्त ने डाली थी वे भी हमें आंख दिखाने का साहस कर रहे हैं। जितने हम प्रजा के लिए वत्सल हैं, उतने ही हम शत्रु के लिए निर्मम हैं। उत्तर और दक्षणावर्त के राज्यों ने कभी उनके संमुख अपने ध्वज झुकाकर हमारी आधीनता स्वीकार की थी उनकी निष्ठाऐं परिवर्तित हो चुकी हैं।

"परम भट्टारक का कथन सर्वथा उचित है। यदि यही स्थिति रही तो एक दिन मगध साम्राज्य छिन्न भिन्न हो जाएगा। पूर्वजों की कीर्ति का रक्षण ही नहीं संवर्धन भी चाहिए। वर्तमान परिस्थिति में बल प्रयोग के अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं है। परम भट्टारक आज्ञा दें जिससे मंत्री परिषद योजना बनाकर स्वीकृति के लिए सम्मुख रख सके।" राधा गुप्त ने कहा।

"महाबलाधिकृत बंधुल क्या कहना चाहते है ?" परम भट्टारक ने प्रश्न किया।

"पदातिक, अश्वारोही और गजसेवा मगध साम्राज्य की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सदैव तत्पर हैं महाराज। वे आक्रमण - सर्व किसी भी चुनौती को स्वीकारने के लिए उद्यत हैं। हमारे सैनिकों का मनोबल बहुत ऊँचा है। हमारी सेनाओं की यशगाथा और शौर्य-कथाऐं अभी विस्मृत नहीं हुई हैं।" महाबलाधिकृत बंधुल ने ओजस्वी स्वर में कहा।

"ठीक है। पश्चिम में हमारे लक्ष्य पेशावर, कंधार, काबुल, उत्तर में कश्मीर, पश्चिम में धोलीनवर्त, और सुदृढ दक्षिण में ब्रह्मगिरि, फिर सौराष्ट्र हमारे लक्ष्य होंगे। सबसे अधिक महानदी और गोदावरी के मध्य स्थित कलिंग राज्य हमारी सतत चिंता का विषय रहा है, जिसको पितामह अपने अधीन नहीं कर पाए और फलस्वरूप हमारा नौकायन और सागर-तटीय व्यापार-व्यवसाय की समृद्धि प्रभावित रही है। कश्मीर के पश्चात कलिंग पर आक्रमण किया जाए। परम भट्टारक ने घोषणा की।"

"ऐसा ही होगा महाराज" बंधुल ने कहा। "सारा विवरण हम सेना-नायकों और बलाधिकृतों के साथ निश्चित किए लेते हैं। प्रथम आक्रमण काश्मीर पर होगा, जिसके लिए निश्चित अश्वारोही दलों, पदातिकों की संख्या निश्चित कर ली जावेगी। इस आक्रमण में गज-सेना का प्रयोग संभव नहीं होगा। हमारे वीरों के लिए काश्मीर पर विजय प्राप्त करना कठिन कार्य नहीं होगा।"

"साधु । किन्तु स्मरण रहे आक्रमण चेतावनी देकर हो । कृषि. जन-जीवन तथा पशुओं की किंचत हानि न हो / यद्यपि हिमशिखिर और झीले अत्यधिक बर्फ से जम जाने से हमारी सेना का मार्ग भी अवरूद्ध हो जावेगा। तथापि धातक प्रहार तभी किए जावें जब हमारी प्रभुता स्वीकार न की जाए । ध्वंज झुकते ही युद्ध रोक दिया जाए । यदि हमारी आवश्यकता प्रतीत हो हम स्वयं सेना के अग्रभाग में रहेगे ।"

"नहीं महाराज, हमारी सेना में अनेक विजेता और योग्य सेनानायक हैं । फिर बलाधिकृत सुबंध स्वयं सेन्य संचालन करेंगे । युद्ध में आपकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

"हमें अपने सेनानायक, स्वयं सुबंध की क्षमता, योग्यता और पराक्रम पर पूर्ण विश्वास है महाबलाधिकृत । काश्मीर विजय के उपरान्त हम वत्स सुबंध और अन्य सेनानायकों को पुरस्कारों से अलंकृत करेंगे, उनके शौर्य प्रदर्शन के लिए ।"

"परम भट्टारक की जय हो ।" जयघोष के साथ सभी अपने आसनों से उठ खड़े हुए । जय-घोष उच्चारित होने ही महाबलाधिकृत तथा सुबंध सहित अन्य उपस्थित सेना-नायकों ने अपने अपने खड्ग म्यानों से निकाल लिए एवं उन्हें हवा में लहराते हुए अभियान में विजयश्री वरण कर लौटने की शपथ ली । राज पुरोहित ने तत्काल युद्धारंभ के लिए शुभ मुहूर्त की घोषणा कर दोनों बाहु उठाकर आशीर्वाद प्रदान किया ।

मंत्रणा का प्रथम चक्र समाप्त होते ही सभा विसर्जन की घोषणा हुई । परम भट्टारक बाहर आऐ । अग्रमहिषी के पद पर आसीन हो चुकी है असंधिमित्रा । परम भट्टारक भी आज ही राजपुरोहित ने पूजन विधि सम्पन्न की है । शुभमुहूर्त में परम भट्टारक ने स्वयं उनके शीष पर मगध साम्राज्ञी का स्वर्ण खचित किरीट रखा था । फिर अंत:पुर में अग्रमहिषी वाले कक्ष में विशिष्ट व्यवस्था के मध्य वे आवास करने लगी थी । उनके दीर्घ नेत्रों एवं गौरवर्णीय मुख पर अधिकार का भाव अवश्य आ गया था किन्तु हृदय और अधिक सरल उदार हो चला था ।

इसके साथ साथ एक और उत्सव घट रहा है पाटलीपुत्र के राज प्रासाद में । वह उत्सव है राजमहिषी पदमावती के पुत्र जन्म का । मान, संभाव से परिपूरित उनके भाव-प्रवण नेत्र और भी संवेदनशील हो चुके हैं। उन्नत मस्तक, गौर वर्णीय, अंगों में कमनीयता और आकर्षण लिए पुत्र जन्म किस माता को गर्वीला नही बनाता ? उस मनोहर नयन बालक का जाति कर्म सम्पन्न कराने आए हैं आचार्य धर्म विवर्धन ।

महेन्द्र राज प्रासाद में आने को उद्यत हुए एवं शाक्यानी ने राजकुल स्वीकारा, उसका स्थान प्रथम नही, द्वितीय रहेगा।" राजमहिषी पदमावती ने उत्तर दिया।

"यह विचारणा तुम्हारे अभिजात कुल और वंश के अनूकूल ही है। तुम मेरी सहोदरा तो नहीं किंतु यदि होती, मैं स्वयं को धन्य मानती और अपने आप पर गर्व करती।"

"हम सहोदरा - सी ही हैं। भाग्य एवं देवाधिंदेव की यही इच्छा है।"

तभी प्रतिहारी ने सूचित किया-परम भट्टारक, धर्मावतार, महाराज पधार रहे हैं।

आक्रमण और युद्धों के इन दिनों में जैसे एक नवीन अनुभूति का उदय हुआ है परम भट्टारक महाराज के हृदय में, जिसे वे कहीं विस्मरण कर चुके थे।

"हमने अत्यन्त निपुणदूत एवं अनेक उपहारविदिशा भेजे थे और शाक्यानी के पत्र के उत्तर में उन्हें पाटलिपुत्र आने का अनुरोध किया था, किन्तु वे दूत रिक्त ही लौट आए हैं। कदाचित शाक्यानी अपने पूर्व निश्चय पर अडिग हैं।" परम भट्टारक ने पीठिका पर बैठते उए कहा। "इस असफलता और परेशानी ने हमें अत्यन्त दुःखी किया है। इसके अतिरिक्त हमारा उपहास भी कम नहीं हुआ है।"

"कदाचित् महादेवी की कोई बड़ी विवशता रही होगी। कोई दृढ़, निश्चय। अन्यथा वे लोकाचार का अतिक्रमण नहीं करती। फिर दो-दो सन्तानों का ममत्व भी कम नहीं होता स्वामी। वह निरंतर नारी-मन को सदैव लालायित रहता है।" असंघिमित्रा ने कहा।

"यदि वे राज प्रासाद में होती तो हम दोनों को ही उनकी सेवा करने का अवसर पाकर प्रसन्नता होती। वह हमारा अहोभाग्य होता।" पद्मावती बोली।

"रही उपहास की बात ? स्वामी की प्रतिष्ठा खंडित हो ऐसा महादेवी स्वप्न में भी नहीं सोचेगी महाराज। मन की आस्था का यही कवच आर्य नारी का सर्वश्रेष्ठ अलंकरण है। शेष सब व्यर्थ। फिर अपनों का मान-भंजन कैसा ? असंघिमित्रा ने विनोद पूर्वक कहा।

"तब हम स्वयं अवसर निकालकर विदिशा जाएंगे प्रिय। हमारे रथ की गति उस ओर तभी मुड़ेगी जब कश्मीर विजय का हमारा प्रथम चरण पूरा होगा। और तभी हमें अपने राज्याभिषेक के उत्सव आयोजन करने में संकोच भी नहीं होगा। संप्रति हम कुणाल से ही मिलने आए थे। कैसे हो वत्स ?" कहते हुए परम भट्टारक ने शैय्या से शिशु कुणाल को उठाकर अपने अंक में ले लिया। फिर उसके मस्तक के मध्य

एक दीर्घ चुम्बन अंकित कर असंधिमित्रा को लौटा दिया।

सहसा परम भट्टारक के नेत्रों में अनुराग का भाव आ गया। "सृष्टि के नव-सृजन का मोह किसे नहीं, क्या पता प्रिय। कदाचित् कल्पतरू के नीचे बैठने पर भी मनुष्य की आकांक्षाएं पूरी नहीं होती होगी। कहते कहते महाराज तनिक हँसे।

" तब उनकी प्राप्ति के लिए कोई संघर्ष भी न करता स्वामी "असंधिमित्रा ने सस्मित कहा।"

"तुम्हारा कथन सत्य जान पड़ता है। और महाराज कक्ष के बाहर जाने को उद्यत हुए।

"और हाँ ! " अग्रमहिषी की ओर दृष्टि पात कर वे बोले।" आज रात्रि हम तुम्हारे कक्ष में आएगे-तुम प्रतीक्षा करोगी न ?

"यह भी स्वामी के लिए कहना शेष है।" असंधिमित्रा भूमि की ओर ताकती हुई बोली। परम भट्टारक कक्ष के बाहर प्रस्थान कर गए।

रात्रि का प्रथम प्रहर।

पाटलिपुत्र के राज प्रासाद में अग्रमहिषी असंधिमित्रा का वह शयन-कक्ष।

"मल्लिका ! अनेक दिवसोपरांत परम भट्टारक मेरे शयन कक्ष में पधारेंगे, उनके स्वागतार्थ क्या करना है, जानती हो ?" अग्रमहिषी ने अपनी विश्वस्त दासी से प्रश्न किया। दासी क्यों ? सखी भी।

मल्लिका दीपाधारों की ज्योति तनिक मंद कर रही थी। क्षीण प्रकाश में तोरण द्वार पर स्वर्ण-पिंजर में सारिका दोहरा रही थी -"परम भट्टारक के स्वागतार्थ क्या करना है, जानती हो -- जानती हो ?" पुष्पमालाओं से तोरण द्वार कक्ष के कोण और भित्तियाँ सज रही थी। कलात्मक काष्ठ-चतुष्पक्षी पर कुछ खाद्य पदार्थ और शीघ्रु से भरी हुई झारी तथा दो रजत-चषक रखे थे।

असंधिमित्रा मुक्त केशों को यवांकुर की वेणी से सजा रही थी। रह-रह कर ग्रीवा संचालन से कानों के मणिकुण्डल डोल-डोल बनाते थे, जैसे निष्कहार से वे स्पर्द्धा कर रहे थे। अग्रमहिषी के शयन-कक्ष को जाने वाला अंतः मार्ग प्रायः निर्जन था।

"जानती हूँ स्वामिनी। और यह भी जानती हूँ परम भट्टारक के आगमन का अर्थ क्या है ? उस अर्थ के साथ आपकी पीड़ा का वह संदर्भ।"

मल्लिका स्वामिनी के निकट आ गई।

"पीड़ा अथवा पराभव ! क्या कहूँ उसे ? परम भट्टारक से पाणिग्रहण के पाँच

वर्ष बीत जाने पर भी मैं उन्हें संतान सुख न दे पाई। अग्रमहिषी का अधिकार पाकर भी-कितनी सामर्थ्यहीन बनी हुई हूँ मैं ?

''नही'' स्वामिनी, प्रकृति में अपार शक्ति है, कठिन से कठिन अभावों की क्षतिपूर्ति करने में उससे अधिक कुशल मायावी शक्ति विश्वभर में नहीं जो आपको उसने दिया है न वह अन्य राजमहिषियों में है, और न भविष्य में होगा।'''

''जानती हो, आज महाराज ने बहन पद्मावती के कक्ष में क्या कहा था ? वे कह रहे थे सृष्टि के नव-सृजन का मोह किसे नहीं व्यापता ?

तभी ''परम भट्टारक की जय हो'' जयघोष से कंचुकी ने कक्ष-द्वार पर महाराज के पधारने की सूचना दी। स्वागत में अग्रमहिषी ने पानी से उनके चरणों पर जल सिंचन किया और कुसुमय कौशय से उन्हे पोंछा। मल्लिका प्रकट हुई परम भट्टारक सन्तुष्ट से रत्नजड़ित काष्ट-पीठ पर बैठ गए। असंधिमित्रा ने स्वयं उनका उत्तरीय उतार दिया। मल्लिका ने झारी से शीघ्रु डालकर दो चषक भर दिए। '' आसव उत्तम है स्वामी। आप प्रसन्न होगें। असंधिमित्रा ने परम भट्टारक के हाथों में चषक दे दिया।

''हम जानते थे।'' परम भट्टारक ने दूसरा चषक स्वामिनी को देने का मल्लिका को संकेत किया।

कब मधुर शैथिल्य में परम भट्टारक डूबते गये ?

मल्लिका कब स्वामिनी से अनुमति लेकर कक्ष के बाहर गई ? कब प्रहरी ने प्रहर रात्रि बीतने की सूचना दी, पता ही नहीं चला।

सात

रात्रि का प्रथम प्रहर ।

अपने शिविर में काश्मीर-नरेश जितशत्रु चिन्तामग्न बैठे हैं । प्रधान सेनापति और महामंत्री से मंत्रणा चल रही है ।

''हमारी सेना को पाटलीपुत्र की सेना के हाथो पराजय पर पराजय मिल रही है महाराज । डलझील के बड़े भाग पर रक्त ही रक्त फैला दीख पड़ता है । शवों के जल प्रवाह के कारण वातावरण दूषित हो चला है । यदि एक दो दिवस और बीते तो सर्वनाश की स्थिति पर पहुँचना होगा ।'' सेनापति कुशसेन ने निवेदन किया ।

''मैं जानता हूँ सेनापति । हमारे सैन्यदल में युद्ध के प्रति कोई उत्साह शेष नहीं है । तथापि स्वाधीनता हमें प्राणों से भी प्रिय है बन्धु ।'' महाराज जितशत्रु ने कहा- ''युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प ?''

''विकल्प है महाराज । हम मगधाधिपति से संधि कर लें । उनकी अधीनता स्वीकार करने पर हमारी शासन की स्वायत्तता बनी रहेगी । प्रभुता सम्पन्न हमारा राज्य मगध साम्राज्य के अधीन अवश्य हो जाएगा ?''

''इस युद्ध में जितना विनाश हुआ है वह तो लौटाया नहीं जा सकता । किन्तु राजधानी और जनजीवन बचाया जा सकता है स्वामी ।'' आमात्य ने परामर्श दिया ।

''इस संधि की भी विवशता है । आमात्य युद्ध की विभीषिका और नर-संहार को रोकने के लिए हम आपके प्रस्ताव को स्वीकृति देते हैं । भय, आंतक, और हिंसा से हमारी प्रजा को मुक्ति मिले ।''

प्रभात की प्रथम किरण के साथ मगधिको के शिविर में श्वेत ध्वज लहराता काश्मीर सेना नायक जा पहुँचा । युद्ध बन्द करने की भावना और संधि प्रस्ताव के साथ ही उसने अपना राज्य चिन्ह गणवेश से उतार कर सम्मुख रख लिए ।

संधिपत्र पर उभय हस्ताक्षरों के साथ युद्ध समाप्त हो जाने की घोषणा हुई । काश्मीर राज्य के विजित राज्यचिन्ह और उनके खच्चरों, शकटों पर परम भट्टारक के लिए लदे रत्नमणि मूल्यवान अन्य उपहारों के साथ मगध सेना पाटलिपुत्र लौट आई। काश्मीर विजय की घोषणा से पाटलीपुत्र नगर की वीथियां गूँज उठी । काश्मीर राज्य में श्री नगर के और अशोकेश्वर देवालय के निमार्ण के आदेश के साथ परम भट्टारक के दिग्विजय

अभियान का प्रथम चरण पूरा हुआ।

काश्मीर, विजय ने परम भट्टारक के राज्यभिषेक और राज्यारोहण के महोत्सव का मार्ग प्रशस्त कर दिया। महामात्य राधागुप्त ने राज्यधन से सम्पूर्ण व्यवस्था कर डाली। राज पुरोहित ने पोष शुक्ला पूर्णिमा का प्रभात इस मंगल कार्य के लिए मुर्हूत नियत किया था।

उत्तरापथ, अवन्तीरथ्य, दक्षिणापथ और प्राच्यपथ स्थित महामात्यों, प्रदेशिकों, नगर श्रेष्ठियों को राज्यरोहण उत्सव में सम्मिलित होने के निमंत्रण भेजे गए। तक्षशिला, उज्जयिनी, सुवर्णगिरी और सुदूर काश्मीर राज्य है। अतिथि आ पहुँचे। पाटलीपुत्र किसी नववधू सा सजाया गया। अतिथि ग्रह अशोक का राम आगंतुको से भर गए। नगरवासी, राजप्रासाद में राजकुल, दास-दासी, सेनापति, आमात्य में अप्रतिम उत्साह का संचार हो रहा था। अग्रमहिषी, असंधिमित्रा, महिषी पद्मावती और कुल वधुऐं प्रसन्न थे। प्रति सायंकाल और रात्रि नृत्य-संगीत, नाट्य, अभिनय-मंच संध्याओं से मनोविनोद कर उठे। त्रयोदशी से ही राजप्रासाद, भवनों पर दीपमाला की जाने लगी।

अंतत: राज्यारोहण के उत्सव का वह क्षण आ ही पहुँचा। पूर्णघट, यज्ञ-वेदिका, आम्रपत्रों की वन्दनवारें, घृत दीप सज्जित दीपावलियॉं, मंगल चौक पूरित विशाल प्रांगण में परम भट्टारक पधारे। स्वर्णखचित सिंहासन पर स्वयं महामात्य ने उन्हें आसीन किया। दुग्ध-मधुमिश्रित पंचनन्द सप्त-समुद्र के जल में परम भट्टारक ने स्नान किया।

राजपुरोहित ने उनके मस्तक पर मंत्रोच्चार करने हुए रक्त तिलक अंकित कर स्वर्ण रत्नजड़ित राजमुकुट परम भट्टारक के शीष पर रखा। सारी सभा उन्माद से जयघोष कर उठी। स्वस्तिवाचन के पश्चात सात कुमारिकाओं ने धृत दीप से सजी आरती उतारी। स्वस्तिवाचन और पुष्पांजली होते ही अपना खड्ग धारण कर परम भट्टारक सिंहासन से उठे।

राज पुरोहित को प्रणाम कर आगुतंको अतिथियों को नमन करते असंधिमित्रा से गठबन्धन कर वे कुल देवता की पूजा हेतु राजप्रसाद के देवालय की ओर चल दिए। पिप्पणी-नाद और जयघोष का क्रम अबाध चलता रहा। ब्राहणों, अश्वपालों, गज-पालों, सारथियों, सेवक, सेविकाओं अन्त्यों और प्रतिहारिकों को पुरस्कार बाँटे जाते रहे। चारणो ने गुणगान किया।

"मगध साम्राज्य का विस्तार होता जा रहा और हमारी ख्याति सूदूर दक्षिण तक

फैल चुकी है तथापि, कलिंग राज्य की सैन्य-शक्ति अजेय और दुर्भेद्य मानी जाती रही है। तात् श्री एवं पिताश्री के समय में भी मगध उसे अपने अधीन न कर सका। हम कलिंग नरेश, वहां के निवासियों और सैनिकों की देशभक्ति और शौर्य के प्रशंसक हैं महामात्य, किन्तु महानदी और गोदावरी स्थित इस राज्य की स्वतंत्र सत्ता हमें नहीं सुहाती है महामात्य।" परम भट्टारक मंत्री परिषद की विशिष्ट सभा को संबोधित करते हुए कह रहे हैं-"हमारी सभा में कलिंग के तोषलि का प्रतिनिधि का रिक्त स्थान बार-बार हमें इसका आभास कराता है।"

प्रथम तो विस्मय और आशंका से महाबलाधिकृत बंधुल परम भट्टारक की ओर देखते रहे। फिर अपने आसन से उठकर कहा-"यदि परम भट्टारक अनुमति दे मैं कुछ कहूँ।"

"कहो ? अनुमति है।"

"मगध की सेना शौर्य एवं पराक्रम में समस्त जंबुद्वीप में अद्वितीय है महाराज। इन छः - सात वर्षों के युद्धों ने जो परम भट्टारक के नेतृत्व में लड़े गए हैं, क्या मेरी उक्ति को सिद्ध करने के लिए अपर्याप्त है स्वामी ?"

"इस यशोगान में कुछ और जुड़ना चाहिए सेनाधिपति। हमारी सेना का इतिहास कलिंग विजय के बिना अपूर्ण है, और रहेगा। अपनी सेना की निष्ठा पराक्रम एवं श्रेष्ठत्व में हमें तनिक भी संदेह नही है।"

"फिर क्या आदेश है महाराज ?" महामात्य उठ खड़े हुए।"

"आदेश की और अधिक प्रतीक्षा न कीजिए। आदेश यही है कि कलिंग राज्य को हमारा दूत तुरन्त भेजा जाए। कलिंग-नरेश मगध के प्रति आस्था व्यक्त करे। संधि कर हमारा आधिपत्य स्वीकारें, और मगध के श्रेष्ठियों को नौकायन द्वारा व्यापार की वे सभी सुविधाऐं दे जो हमें महिष्मती, भुगुकच्छ, सोपात आदि में प्राप्त है।"

"अन्यथा ?"

"अन्यथा मगध की सेना कलिंग की राजधानी के द्वार पर पहुँच जाएगी। धौली, जौगढ, चम्पा और भुवनेश्वर की समृद्धि अथवा उसका विनाश, मगध की मित्रता अथवा उससे शत्रुता, किसी एक विकल्प को उन्हें चुनना होगा।"

परम भट्टारक सिंहासन से उठ खड़े हुए। उनके जयघोष के साथ सभा विसर्जित हो गई।

रात्रि का प्रथम प्रहर।

बिना पूर्व सूचना के अग्रमहिषी के कक्ष में पहुँच रहे हैं परम भट्टारक। प्रतिहारी का जयघोष सुनकर अग्रमहिषी स्वामी के स्वागत हेतु तत्पर हो रही हैं ।

''दासी को क्षमा करे, महाराज ने स्वागत प्रबन्ध का अवसर ही नही दिया ।'' वे परम भट्टारक को अर्ध्य प्रदान कर चिंतनाशुक से उनके चरण स्वच्छ कर उठीं।

राज्य-प्रबन्ध, युद्धों और प्रशासकीय समस्याओं में ऐसा उलझा रहा प्रिय कि तुम्हारे साथ शान्ति से समय बिताने का समय भी न निकाल पाया।'' परम भट्टारक ने स्नेह से असंधिमित्रा के कंधे पर अपना दाया हाथ रख दिया। वह स्पर्श उन्हे सुखद प्रतीत हुआ।

''निस्संदेह।'' असंधिमित्रा ने सस्मित कहा।

''मुझे ही नहीं, विदिशा जाने की बात भी भूल गए स्वामी। एक बार महादेवी शाक्यानी से भेंट तो करें। महेन्द्र और संघमित्रा भी अब बड़े हो गए होगे आर्यपुत्र।''

''क्यों नहीं ? तुम समझती हो हमारे हृदय में यह कामना नही जागती होगी ? किन्तु इसं प्रकार विदिशा पहुँचना हमारी दुर्बलता का परिचायक नहीं होगा? हम कही से दुर्बल नही होना चाहते।'' परम भट्टारक ने निर्णय-सा देते हुए कहा।

कदाचित कुछ अनुचित हुआ है- असंधिमित्रा को लगा।

''मुझे क्षमा करें आर्यपुत्र। मेरा मंतव्य स्वामी की दुर्बलता की ओर संकेत करना न था। मैं इस तथ्य से परिचित हूँ कि नारी प्रकृति से ही भोग्या बनी है। हमारे पुरुष प्रधान समाज की विधान रचना ऐसी ही है स्वामी। अतः नारी पुरुष के आश्रय में रहने हेतु विवश है, किन्तु वे एक दूसरे के पूरक भी हैं स्वामी। वह भी पुरुष का आश्रय बनी रहती है, अन्यथा सृष्टि रचना ही न हो।''

''मैंने उस आश्रय को तुम सबसे खोजा और प्राप्त किया है प्रिये। भविष्य में इस आश्रय की खोज और उसकी प्रत्याशा असमाप्त रहेगी। वहीं मैं दुर्बल हूँ।''

''यह पुरुष की दुर्बलता कदाचित् हो, अथवा न हो किन्तु अंततः नारी वंचना ही पाती है महाराज।''

''तर्क में तुमसे जीतना कठिन है।''

''यह तर्क नही, जिज्ञासा भी।''

''तो, जिज्ञासा पूरी हुई ?''

''अपूर्ण ही रहने दीजिए स्वामी। अपूर्णता आनन्द देती है। मल्लिका ने आसव की झारी और चषक सन्मुख रख दीये। विनय से सिर झुका कर प्रणाम किया और

कक्ष के बाहर हो गई ।

"यह रात्रि सुखद होने दो प्रिय । भविष्य की कहना कठिन है किन्तु निश्चय ही वह क्षण अति निकट है जब तुमुल युद्ध का ध्वनि संकेत होगा, रण दुंदुभी से राज प्रासाद गूंज उठेगा और ....?"

"और क्या स्वामी ।"

"और इस बार हम स्वयं रणभूमि में होंगे ।"

अग्रमहिषी ने आसब से चषक भरा फिर विनीत स्वर में कहा "पुष्पासव सुमधुर है महाराज, इस पेय से प्रसन्न हो । युद्ध तो क्षत्रिय के जीवन का अंग है स्वामी । वे होते ही रहते हैं और हम राजमहिषियां विजय-आरती सजाए उनकी प्रतीक्षा करती रहती हैं । मैं भी प्रतीक्षा करूँगी ।"

महाराज ने पुष्पासव पीकर चषक रिक्त कर दिया । फिर बोले-तभी वे वीर पराभव का मुख नहीं देखते, युद्ध से लौटकर तुम्हारे जैसे चन्द्रमुख ही देखते है । तुम्हारी प्रतीक्षा की प्रतीति है मुझे ।

पुष्पासव के प्रभाव से परम भट्टारक के नेत्र तनिक रक्ताथ हुए । अग्रमहिषी ने पाकशाला मे भोजन के थाल मंगवा लिए । भोजनोपरांत महाराज के लिए विश्राम आवश्यक हो चला । ताम्बूल सेवन कर वे सोने लगे ।

कई रात्रियों से अनिद्र रहे थे परमभट्टारक ।

सप्ताहांत मगध का दूत पाटलीपुत्र लौट आया । कलिंग-नरेश ने अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया । कलिंग की सेना और प्रजा शत्रु का सामना करने को उद्यत हैं ।

परम भट्टारक ने दूत का उत्तर सुना । अविलम्ब महाबलाधिकृत, सेनापति को पदातिक, अश्वारोही और गज सेना के साथ तोषली की ओर कूच का आदेश दिया। वे स्वयं अग्रिम पंक्ति में रथारूढ़ रहेंगे । प्रमाद का समय अब नही रहा । मगध साम्राज्य को प्रथम बार युद्ध की चुनौती दी गई है । प्रश्न साम्राज्य की प्रतिष्ठा का है । निरंकुश कलिंग नरेश को उचित दण्ड देना ही अभीष्ट है । वीरों को उनकी वधुऐं, माताऐं विजय-तिलक अंकित कर विदा देगी ।

असंधिमित्रा स्वयं परम भट्टारक की आरती उतारकर तिलक अंकित करेगी । सारी व्यवस्था आरंभ हो चुकी है । मध्य रात्रि सेना प्रस्थान करेगी । कलिंग राज्य के अहंकार का मर्दन होगा ।

पाटलिपुत्र से तोषली जाने वाला पथ रात्रि में धूल धूसरित हो रहा है । पदातिकों के पदचाप, अश्वों की हिनहिनाहट और गजों की चिंघाड़ों से दिशाएं प्रकंपित हैं। दीप शलाकाऐं लिए दल के दल साथ चल रहे हैं । चारण दुदंभी बजा रहे हैं । परम भट्टारक का रथ सैन्यदल के साथ-साथ हैं । पूर्ण रात्रि का प्रवास, फिर संध्या की अरुणिमा में दूर से कलिंग की राजधानी के भवनों के शिखर, नगर कोट के सिंह द्वार और बुर्ज सभी स्पष्ट दिखाई दे रहे है । तोषली के गढ़ पर सैनिकों की हलचल आरंभ हो चुकी है । कलिंग सेना प्रतिरोध एवं संघर्ष करेगी। इसी समय उनके शौर्य का मूल्यांकन होगा।

नगर की बाह्य सीमा पर मगध सेना रुक गई । परम भट्टारक और महाबलाधिकृत के साथ-साथ अन्य सेना नायक के शिखर लग गये महानदी के तट का वह आम्रवन पूरी तरह सैनिकों से भर गया । रात्रि में विश्राम करेगी मागधी सेना । आक्रमण का संकेत कभी भी किया जा सकता है । सभी सावधान रहें ।

उषा काल समाप्त भी नहीं हुआ था कि तोषली दुर्ग का सिंह द्वार खुला । रणभेदी बजी और अश्वारोहियों, पदातिकों और गज सेना की पंक्तियां निकल पड़ी । पलक झपकते झपकते कलिंग की सेना के दल के दल मागधी सेना पर झपटे, और मागधी सेना की पंक्तियो में प्रवेश करने को आक्रमण कर उठे । तुमुल युद्ध आरंभ हुआ । किन्तु मागधी सेना के दुर्ग के बाहर ही रोकने का कलिंग के वीर साहस जुटा न सके। उनके पीछे दोनों ओर से मागधी सेना ने भीषण आक्रमण कर दिया । कलिंग की सैनिक दुकड़ियो को पीछे खदेड़ते हुए विद्युत गति से मागधी वीर सिंह द्वार मे प्रवेश कर गए। कोट की प्राचीरों पर भयानक युद्ध होने लगा ।

इस भीषण युद्ध में मागधी सेना के अश्वारोही एवं गज सेना ने ऐसा वेगपूर्ण आक्रमण किया कि कलिंग के सेनानायकों की व्यूह रचना कर प्रतिरोध का अवसर ही न मिला । तोषली के नगर के राज पथ, और वीथियों में मारकट मचने लगी । भवनों में अग्नि की लपटें निकलने लगीं और कलिंग के राज प्रासाद के निकट तक युद्ध आ पहुँचा । मागधी सेना के अश्वारोही और गज सेना भयानक मार काट में संलग्न हैं । दोनो ओर से असंख्य वीरो के शव पृथ्वी पर पड़े है । अथवा भीषण प्रहारों के आधात से घायल पड़े कराह रहे है । किसी को किसी की ओर रुक कर देखने का अवसर ही नही । शवो का रौंद कर अश्वारोही दौड़ते जा रहे है । परम भट्टारक की जय हो का जयघोष कलिंग सेना में उठने वाले जयघोष को शान्त कर चुका है । मागधी सेना कलिंग सेना के वीरों को त्रस्त कर चुकी है । तोषली के राज प्रासाद के सिंह द्वार पर

युद्ध समाप्त करने हेतु श्वेत ध्वज फहरा दिया गया है । सेनापति का आदेश पाकर मगध की उन्मत सेना ने प्रहार करना बन्द कर दिया है । तोषली नगर का बहुत बड़ा भाग अग्नि में धू धू कर जल रहा है ।

राजपथ के पर चारो ओर शव ही शव बिखरे पड़े हैं । घायल सैनिको का करुण क्रंदन और सिसकियां भरकर रुदन करते नारी कंठ सुनाई पड़ रहे है । सारा नगर ही रणभूमि सा दीख पडता है कलिंग ने कूटनीतिक आरंभ अस्वीकार कर दिया । उसका फल भोगना प्रजा की नियति है । परम भट्टारक की प्रभुता को स्वीकार न करने का मूल्य यही एक है । ....

विजेता परम भट्टारक खड्ग लिए रथ पर खड़े हैं । मागधी सैनिकों से घिरा रथ तोषली के राज-प्रासाद की ओर बढ़ रहा है । किन्तु उस विजय का उल्लास और उसकी चेतना का कहीं कोई लक्षण देख नही पा रहे हैं मगध सम्राट ! संपूर्ण राजपथ सूना और निष्प्रभ-जैसा है । द्वार द्वार से रुदन करते नारी कंठ और धूम्र के मेघ उमड़े चले आ रहे हैं ।.............

क्या यही है विजय का अर्थ, और उसका मर्म ? किस आसुरी आकांक्षा के परिणाम स्वरूप युद्ध लड़े जाते हैं, और उसकी अंतिम परिणिति यही है क्या ?

आठ

''नहीं '' महामात्य राधागुप्त । हमें नहीं चाहिए रक्तरंजित कलिंग विजय का यह श्रेय । इस भीषण युद्ध में जो नर संहार हुआ है उससे हम दु:खी है महामात्य । युद्ध की ऐसी भयंकरता हमने प्रथम बार देखी है । हमारे जीवन काल का यह अन्तिम युद्ध होगा-अन्तिम युद्ध ।'' कहते कहते परम भट्टारक उद्विग्न हो उठे ।''हम कदाचित जय-पराजय तक ही सीमित होकर रह गए । हमने उसके प्रतिफलन से घटित होने

वाले उस महानाश को देखा ही नहीं।"

"परम भट्टारक के आदेश से सभी युद्ध बंदी मुक्त कर कलिंग भेज दिए गए हैं। जो आहत हुए हैं, उसकी चिकित्सा हो रही है।" महामात्य ने निवेदन किया।

"और जो असंख्य वीर हताहत हुए उनकी गणना कदाचित आप कर भी न सकेंगे महामात्य ? यह कैसी विडंबना है कि जिन्हें जीवन देने के हम अधिकारी नहीं, उनके मरण का कारण बने हम। किसी ग्लानि और आशंका से हमारा मन विचलित हो रहा है। हम रात्रिभर जागते रहे। निद्रा भंग के कारण नींद नही आई। गंगा तट पर विहार हेतु जाने का मन है। रथ तैयार कराये महामात्य। असंधिमित्रा साथ चलें।"

"जो आज्ञा महाराज।" महामात्य तुरन्त मंत्रणा कक्ष से बाहर आ गए। अग्रमहिषी सूचित हुई। अल्प समय में ही रथ और अगंरक्षक अश्ववारोही राज प्रासाद के सिंह द्वार पर उद्यत हुए। अग्रमहिषी के साथ रथारूढ़ हो रहे है महाराज। एक अश्व पर महामात्य बैठ गए हैं। गंगातट की ओर प्रस्थान कर रहे हैं सभी।

"जानती हो प्रिय गंगावतरण की कथा ? पतित-पावनी का स्वरूप इन्हें कैसे मिला?" परम भट्टारक ने अग्रमहिषी से पूछा।

"जानती हूँ स्वामी। शत वर्षों पूर्व अपने पूर्वजों के उद्धार हेतु महाराज भगीरथ अपनी तपस्या से पृथ्वी पर इन्हें लाए थे। वे सगर के आठ हजार पुत्र थे जिन्हें अपनी तपस्या में विध्न डालने के कारण मुनि कपिल ने श्राप देकर भस्म कर दिया था। उन्हीं का उद्धार करना था महाराज भगीरथ को -"

किन्तु उनके साथ समस्त धरा का ही उद्धार हो गया प्रिय, वह पावन हो गई। "हठात् महाराज ने रथ रोकने का सारथी को आदेश दिया -" रथ रोको सारथी।" वे तुरन्त उतर पड़े। गंगातट पर विपरीत दिशा से स्थविर महावरुण पीछे पीछे बौद्ध भिक्षुओं का एक दल और उनके साथ सुदर्शनछवि वाला बाला योगी-बाल भिक्षु। महाराज देखते देखते ही रह गए वह अनुपम दृश्य। परम भट्टारक के साथ साथ असंधिमित्रा ने भी वह दृश्य देखा, महामात्य ने भी। दृष्टि हट ही नही रही थी। स्थविर महावरुण और उनका दल निकट आ गए। निस्पृह और निर्लिप्त महास्थविर के मुख पर अपूर्व शान्ति थी। वे परम भट्टारक को समुंख देख तनिक रुके। परम भट्टारक ने श्रद्धा से कर बद्ध कर नमन किया। अग्रमहिषी सहित सभी नमित हुए। अभय की मुद्रा में स्थविर का दांया हाथ उठा। बाएं में वे दंड पकड़े रहे।

परम भट्टारक ने परिचय पाने की मुद्रा में महामात्य की ओर देखा। "स्थविर

महावरूण हैं स्वामी। निकटही इनका संघाराम है प्रभु।" महामात्य ने परिचय दिया।

"हमारे अहोभाग्य कि आपके दर्शन हुए भन्ते। पाटलीपुत्र पधारने का अनुग्रह करें आचार्य।" परम भट्टारक ने निवेदन किया और उनकी दृष्टि बाल-भिक्षु की ओर अब भी स्थिर थी।

"आप कौन है वत्स ? इतनी अल्पायु में ऐसा त्याग और तप का प्रयोजन ? पूछा परम भट्टारक ने।

"बीतरागी मन आयु नही देखता राजन्। यह निर्ग्रन्थ हैं। हितोपदेश और लोक-कल्याण की भावना के कारण हमने इन्हें जिन शासन में दीक्षित किया है। इनकी विरक्ति का कारण इनसे ही पूछना, जब कभी अवसर मिले।

"अवसर आज ही है, अभी।"

"किन्तु इनके पास तो अवसर नहीं।"

"मेरी प्रार्थना का उत्तर नही मिला आचार्य ?"

परम भट्टारक ने दोहराया।

"कल वैशाख शुक्ल पूर्णिमा है, तथागत बुद्ध पूर्णिमा। आपके राज प्रासाद में आएंगे पाटली पुत्र। किन्तु अकेले नहीं। शिष्यों के साथ।"

"और भिक्षु निर्ग्रथं ?"

"वे भी होगे। चिन्ता न करे।" कहते हुऐ विपरीत दिशा में स्थविर और उनका दल चल दिया।

स्तंभित परम भट्टारक उस दिशा मे देखते रहे।

पाटलिपुत्र में राज प्रसाद का उद्यान। मौलिश्री के नीचे शिलापीठ पर विराजे हैं स्थविर महावरूण। निकट ही बैठे है बाल भिक्षु निर्ग्रन्थ। सम्मुख परम भट्टारक, पद्टमहिषी, राजमहिषियां, आमात्य आदि अपने अपने आसनों पर आसीन हैं। स्थविर महावरुण प्रवचन कर रहे हैं - "मिथ्या दृष्टि त्याग कर सम्यक दृष्टि ग्रहण करने का वैरमण आस्रव-निरोध की ओर प्रेरित करता है। अविद्या-निरोध ही मुख्य आस्रव निरोध है। आस्रव का मूल यही अविद्या है। कायास्त्रव, भवास्त्रव और अविद्यास्त्रव आत्मा की अरूपी सत्ता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में बाधक हैं। जिनशासन का अर्थ कामना एवं एंद्रिक ऐषणाओं की विजय ही है। प्राणातिपात विरमण, अदत्तादान विरमण, कार्य भोग मिथ्यावार से विरमण, मृषावाद विरमण, बौद्ध उपासक के लिए यही पंचशील हैं। सुरा, मैरेय, मद्यव और प्रसाद से विरमण मृशावाद विरमण हैं। अन्यथा मनुष्य

दैहिक, दैविक और भौतिक तीनो प्रकार के तापों से ग्रस्त रहता है। इन सबसे मुक्ति ही निर्वाण की ओर अग्रसर होना है। मानव जीवन का अन्तिम तथ्य यही निर्वाण है।"

बुद्धम् शरंण गच्छामि

संघम् शरणं गच्छामि

धम्मं शरणं गच्छामि

भिक्षुक समुदायका समवेत स्वर तीन बार गूंजा।

आर्चाय महावरुण मौन हो गए। फिर पद्यमुद्रा में ऐसे ही बैठे रहे। नेत्र मूंदे हुए। ध्यान-रत से।

सम्पूर्ण समाज मौन था। परम भट्टारक अब स्वयं ध्यानस्थ से बैठे थे। आधी घड़ी ऐसी ही बीती। स्थविर महावरुण, बाल भिक्षु निर्ग्रन्थ और भिक्षुगण ने ध्यान समाधि भंग की। परम भट्टारक पुनः तन्मय से स्थविर महावरुण एंव बाल भिक्षु निर्ग्रन्थ की ओर देखते रहे।

ध्यान समाप्त होते ही उपस्थित समुदाय विसर्जित होने लगा। परम भट्टारक आसन से उठे। शिलापीठ पर बैठे स्थविर महावरूण के निकट आए। आदर नमन कर पूछा-"माया का अर्थ क्या है आचार्य ?"

"विचार और प्रवृति में एक रूपता का अभाव ही माया है राजन्।"

"आचार-धर्म का मूल कौनसा हैं ?"

"सम्पूर्ण आचार धर्म का मूल विनय है।"

"निर्वाण का अर्थ ?"

"दृव्य-सत्ता का अभाव।"

"मानसिक अन्तर्द्वद्वो का शमन कैसे संभव है आचार्य ?"

"बुद्ध शरण।"

"अब पाटलीपुत्र कब पधारेंगे आचार्य ?"

"इस प्रश्न का उत्तर इस समय संभव नही राजन्।"

"अन्य कोई साधन ?"

"अन्य साधन है राजन, नत भक्तिकारण्य उरमुंड पर्वत पर निवास करने वाले स्थविर उदगुप्त मथुरा में है राजन्। तीन दुर्लभ रत्न-बुद्ध, धर्म, सेवा की नित्य पूजा का मर्म वेही बताऐगे राजन्।"

"अर्थात ?"

"अर्थात पाटलीपुत्र में उनका आगमन आप सब
करेगा।"

"और आप ?"

"हम अब प्रस्थान करेंगे राजन् ।"

"रात्रि विश्राम ?"

"गंगातट, संधाराम में होगा ।"

परम भट्टारक ने आग्रह किया आहार लेने का । केवल दुग्धपान कर स्थविर महावरुण अपने दल के साथ चलने को उद्यत हुए । उद्यान के बाहर तक परम भट्टारक राज-महिषियाँ. आमात्य और प्रजाजन स्थविर महावरुण को छोड़ने आए । सबने बद्ध-करों से साधुजन और आचार्य की वन्दना की । प्रति नमन कर आचार्य महावरुण चल पड़े । आर्द्र नयनों से परम भट्टारक कुछ समय उन्हें देखते रहें और रथ विहीन ही राजप्रसाद की ओर लौट चले ।

कदाचित प्रथम बार परम भट्टारक को अनुभव हुआ, जैसे इस बाह्य जगत में अन्र्यत परे एक अन्तर्जगत और भी है, जिसमें मनुष्य जीता है । वह अन्तर्जगत कहीं अधिक शान्त, सुखद और रमणसील हैं । वह जगत् जहां उद्वेगों का शमन संभव हैं। संभव है द्वंद्रों से मुक्ति ।........

निस्संदेह, परम भट्टारक को लगा, वे इन दोनो के मध्य बिन्दु पर खड़े हैं । उनके दोनो ओर दो सत्ताऐं हैं । किन्तु इनमें परम सत्ता कौंनसी है ? आत्मा की अरूपी सत्ता को जानना ही उस परम सत्ता का वरण करना नहीं है क्या ? इसका उत्तर खोजना ही होगा ।

रात्रि का प्रथम प्रहर ।

परम भट्टारक का शयनकक्ष ।

महाराज को नींद नही आ रही है । शैया के निकट पीठिका पर आसीन हैं अग्रमहिषी असंधिमित्रा ।

"प्रिय ! देखा तुमने, बाल भिक्षु निर्ग्रन्थ की आकृति कितनी मोहक है ? दृष्टि हटाए नही हटती, लगता है कोई राजकुमार तापस वेश-धारी बना हो ?"

"हॉं स्वामी । मैं उस आकृति को पहचान रही थी । पहचान चुकी हूँ महाराज।"

"कौन है बाल भिक्षु निर्ग्रन्थ, तुम कैसे पहचानती हो उसे ?"

"निर्ग्रन्थ और कोई नहीं, इस राजप्रसाद में ही पोषित कुमार सुसीम का पुत्र ही

है। आर्यपुत्र, अपनी माता वसुमती की ही अनुकृति है यह बाल-भिक्षु। आप कदाचित पहचान न सकें ?''

''किन्तु सुसीम का कोई पुत्र ...... ?''

''हां स्वामी, राज प्रासाद से पलायन के समय गर्भवती थी देवी वसुमती। मैंने सुना था, किसी संघाराम में किन्हीं स्थविर के संरक्षण में वे रही थीं। वहीं प्रसव हुआ था। आचार्य महावरुण वे ही स्थविर हैं। और भिक्षु निर्ग्रन्थ वही वसुमती पुत्र है महाराज?''

''और आर्यावसुमती ?''

''वे गंगा में जल समाधि ले चुकी हैं अभिपुत्र।''

''आग्रमहिषी के पास उसका प्रमाण, और इस विवरण की सत्यता का आधार?''

''यह विवरण मल्लिका ने दिया है आर्य पुत्र। उसके अग्रज श्वेतांग ने स्थविर महावरुण से दीक्षा ली है। वे उन्हीं के संघाराम में निवास करते हैं सम्पूर्ण घटना के भिक्षु श्वेतांग ही साक्षी है ''आर्यपुत्र।''

परम भट्टारक तनिक अप्रतिभ से हुए। बाल भिक्षु निरग्रंथ और कोई नही राजकुमार सुसीम के मरणोपरान्त उत्पन्न हुआ पुत्र है, यह समाचार पाटलीपुत्र के राजप्रसाद के अन्तःपुर से आरंभ होकर सम्पूर्ण नगर में फैल गया। परम भट्टारक एवं अग्रमहिषी सहित सारा राजकुल असमंजस की स्थिति में पड़ गया। कदाचित् स्थविर महावरुण के आगमन के पूर्व यह रहस्य पता चल सकता तो बाल-भिक्षु निर्ग्रन्थ पाटलीपुत्र ही में ही नहीं, राज प्रासाद में समुचित आदर पाते। कुल वधुऐं उनके दर्शन से स्वयं को कृतकृत्यमानती। किन्तु स्थविर महावरुण की उपस्थिति में उनकी उपस्थिति गौण हो गई।

परम भट्टारक पुनः स्वयं स्थविर महावरुण के संघाराम की यात्रा करेगे। वे स्वयं बाल-भिक्षु निर्ग्रन्थ को पाटलिपुत्र के लिए आमंत्रित करेगे . फिर वे प्रासाद की राजकीय अतिथि शाला में सम्मानित अतिथि होगे। उनके अतिथ्य से पावन होगे राज प्रासाद, राजकुल और स्वयं पाटलिपुत्र की सारी प्रजा।

किन्तु स्वयं स्थविर महावरुण राज प्रासाद के अतिथि नही बने। प्रासाद के बाहर उद्यान में ही मौलिश्री के नीचे शीला-पीठ पर बैठकर ही उन्होने स्तवन किया। फिर केवल दुग्धपान कर विदा लेली। क्या स्थविर जान गए हैं। राज प्रासाद में जो कुछ घटित हो चुका है ? क्या वे जानते हैं ? बाल भिक्षु निर्ग्रन्थ के तात का वध परम भट्टारक

के हाथों हुआ है । आर्या वसुमती की जल-समाधि का कारण यही घटना-चक्र था? किन्तु क्षात्रधर्म क्या कहता है ? वीर भोग्या वसुंधरा । अपने अधिकार आत्म-सम्मान और साम्राज्य की सुरक्षा के लिए, उसकी प्रतिष्ठा संवर्धन के लिए, लड़े जाने वाले युद्ध, शत्रु को उसके दुस्साहस के लिए प्राणदंड की व्यवस्था क्या न्यायोचित नही है? संसार केवल शक्तिशालियों के लिए बना है । स्थविर महावरुण कहते हैं-अर्थ सत्य का अभाव ही निर्वाण की स्थिति है ।

''वत्स कुणाल को विद्याध्यन के लिए आचार्य सुधर्म के गुरूकुल में उज्जयिनी भेजकर हम चिन्ता मुक्त हो जाना चाहते हैं प्रिय । इस राज प्रासाद और पाटलिपुत्र में उनकी समुचित शिक्षा हमें संदिग्ध जान पड़ती है । यहाँ का वातावरण उनके अनुकूल नही । फिर आचार्य सुधर्म शस्त्र-शास्त्र मर्मज्ञ है । वे उसे संस्कार दें, यही हमारी आकांक्षा है । तुम्हारा अभिमत क्या है आर्ये ?''

''मेरा अभिमत और आपका अभिमत पृथक-पृथक नहीं है आर्यपुत्र ! आपका निर्णय उचित ही है । उज्जयिनी से हम दोनों का रागात्मक संबंध है स्वामी । फिर आचार्य का गुरूकुल नगर से चार योजन दूर क्षिप्रातट पर स्थित है । नागरीय जीवन कुमार को प्रभावित नहीं कर सकेगा और वे अधिक एकाग्र हो सकेंगे स्वामी । '''' तब तो आज रात्रि कुमार कुणाल को विदा देने का प्रबन्ध करो प्रिय । द्विज आमात्य सुबंध को हमने मथुरा जाकर महास्थविर आचार्य उपगुप्त को अर्हतों सहित पाटलीपुत्र सादर लिवा आने का कार्य सौंपा है । वे ही वत्स कुणाल को मार्ग में उज्जयिनी पहुँचाने जाऐंगे। तुम राजमहिषी पद्मावती को मेरा संदेश दो ।'' ''जो आज्ञा स्वामी ।''

अंसधिमित्रा ने तुरन्त राजमहिषी पद्मावती के कक्ष की ओर प्रस्थान किया ।

''कुमार कुणाल कहां हैं ?'' कुणाल को कक्ष मे न देख पाकर असंधिमित्रा ने प्रश्न किया ।

''दासी नन्दिता के साथ बाहर निकल गया है कुणाल । उसका पुत्र समवयस्क है क्षण । दोनो में बड़ी पटती है दीदी ।'' बोली-पद्मावती ।

''परम भट्टारक ने आचार्य सुधर्म के गुरूकुल में कुमार के अध्ययन की व्यवस्था की है । आज रात्रि द्विज आमात्य सुबंध के साथ कुमार को उज्जयिनी जाना है ।

क्षण भर के लिए राजमहिषी के मुख पर चिन्ता की रेखाऐं दिखाई दी । कुछ पल बीतते बीतते वे बोली-''स्वामी का यह निर्णय वत्स कुणाल के हित में ही है दीदी। फिर मैं अपने उदर रोग से दिन प्रतिदिन दुर्बल होती जा रही हूँ । यह जीर्ण रोग मेरे

प्राणों के साथ ही विसर्जित होगा। इन परिस्थितियों में वत्स कुणाल का उज्जयिनी रहकर विद्याध्यन करना एक उत्तम प्रस्ताव है। फिर वह प्रस्ताव स्वयं परम भट्टारक ने किया है, आपकी सहमति भी है। शैशव से ही अत्यन्त भावुक और स्नेहिल है कुणाल। कदाचित् मेरा वात्सल्य स्नेह उसे संवार भी न पाएगा। यह मेरे सामर्थ्य में है ही नही।''

''चिन्ता न करो बहन पद्मावती-कुणाल मेरा भी उतना ही पुत्र है जितना तुम्हारा। उसके मुख को देखकर ही तो मैं अपने बंध्या होने के विषाद को भुलाए रखती हूँ। किन्तु जितने निकट होना चाहती हूँ उसके, उतना ही वह दूर होता जा रहा है। कदाचित् हम दोनो माताओं की नियति यही है। भाग्य तथा कुल देवता की यही इच्छा है कदाचित्।''

नौ

मथुरा से नौकायन कर स्थविर आचार्य उपगुप्त अपने अर्हत शिष्यों के साथ पाटलिपुत्र पधार चुके हैं। द्विज आमात्य सुबंध स्वयं उनकी निवास व्यवस्था एवं समुचित आदर सत्कार के प्रभारी नियुक्त हैं। प्रतिदिन अशोकाराम में प्रातः एवं सायं संगोष्ठी तथा स्तवन चल रहे हैं।

उस दिन प्रातः संगोष्ठी में परम भट्टारक स्वयं राजकुल के साथ प्रवचन सुनने पधारे हैं। स्थविर उपगुप्त कह रहे हैं-''संयम और भावशुद्धि कर्मकांड नहीं हैं, मनुष्य के नैतिक कर्तव्य हैं। मनुष्य के आचरण कें प्रमुख अंग माता-पिता, गुरु के प्रतिश्रद्धा, पत्नी, संतान और परिवार के प्रति सेवा का भाव हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, श्रमिक, भृत्य और संत सभी समाज के महत्वपूर्ण सदस्य हैं, एवं समान आदर के अधिकारी हैं। धार्मिक एवं सामाजिक आडम्बर व्यर्थ हैं। धर्म के वास्तविक स्वरूप को पहचानना स्वयं को पहचानना है। उस स्वरूप को पहचानकर सत्य के मार्ग पर चलें। सर्वकल्याणं सन्तु। बुद्धं शरणं।

अर्हतो ने समवेत दोहराया :

बुद्धं शरणं गच्छामि

संघ शरणं गच्छामि

धम्मं शरणं गच्छामि

"धर्म का वास्तविक स्वरूप कौनसा है ?" परम भट्टारक ने आचार्य से पूछा।

"चितशुद्धि, अपरिचित, समप्रतिति, सचेय, संयम, अहोभाव, एवं माधुर्य। हिंसा का सर्वथा त्याग, सहिष्णुता। दैनिक जीवन में उसकी प्रायोगिकता।"

"प्रायोगिकता से तात्पर्य क्या है ?"

"धर्म दर्शन को आचार्य, विद्वानों अर्हंतो श्रमणों तक सीमित न कर जन - जीवन में मनुष्य मात्र के व्यावहारिक कर्तव्यो से उसे जोड़ना एवं इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर चर्चा एवं विचार-विनिमय की व्यवस्था।"

"इसका प्रथम सोपान ?"

"प्रथम सोपान पाटलीपुत्र में तृतीय बौद्ध-संगीति का समायोजन, जिससे मगध के प्रजाजन को स्वतंत्र धर्म चर्चा एवं तथागत के धम्य-दर्शन का परिचय मिल सके। प्रमुख नगरो में धम्म-संघ की स्थापना हो। तृतीय धर्म-संगीति के अध्यक्ष हों मोग्गलिपुत्र तिस्स स्थविर।

"इस वृहत आयोजन के प्रबन्ध का पर्यवेक्षण एवं मार्गदर्शन स्वयं आचार्य श्री करे, ऐसा हमारा अनुरोध है।"

"इसमें अनुरोध कैसा राजन्, यह तो हमारा पुनीत कर्तव्य होगा। इस आयोजन से न केवल बौद्ध-संगीति की परम्परा आगे बढ़ेगी अपितु विचार मंथन का समय मिलेगा।"

"तब निश्चय ही तृतीय संगीति का समायोजन पाटलिपुत्र में अब से एक मास के भीतर होगा। इस समागमके लिए समुचित व्यवस्था तुरन्त आरंभ कीजिए महामात्य। प्रथम धर्म महामात्य की नियुक्ति कर उन्हें यह उत्तरदायित्व सौंपे।"

परम भट्टारक ने आदेश दिया।

"जो आज्ञा महाराज।" महामात्य ने शीश झुकाकर कहा।

आचार्य उपगुप्त प्रतिदिन उपदेश देते रहे-धर्म-संगीति की व्यवस्था साथ-साथ चलती रही।

धर्म-संगीति के आरंभ का दिन आ पहुंचा है।

सम्पूर्ण पाटलिपुत्र में नवीन उत्साह छा रहा है । राजपथ पद आम्रपत्र-वंदनवारें, तोरण, एवं स्वागत-द्वार सज रहे हैं । अत्यंत विशाल मुक्ताकाशी सभा--मंडप निर्मित किया गया है । पूर्ण कुंभ स्थापित हैं । स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स नगर में अर्हंतो के साथ पधार चुके हैं । राजकुल, नगर-जन, भृत्य, दास-दासियाँ, कंचुकी, प्रतिहारी, सभी पंक्तिबद्ध विशाल सभा-मंडप में बैठे हैं । सशस्त्र प्रहरी भिक्षु-शिविरों, अतिथिशालाओं, और सभा-मंडप में सुरक्षा के लिए नियुक्त हैं । आचार्यो के धर्म-प्रवचन के साथ साथ विचार विनिमय, वाद-विवाद, प्रश्नोत्तर का क्रम एवं चर्चाएं हो रही हैं । सहस्त्रों पुरुष-नारी कंठ प्रतिदिन मंत्रोच्चार करते हैं बुद्धं शरण गच्छमि, संघ शरणं गच्छामि, धर्म शरण गच्छामि । विशाल मानव समुदाय के सम्मुख सबसे ऊंचे धवल वस्त्र अवगुंठित काष्ठ पीठ पर स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स विराज रहे है । उनके ठीक सम्मुख परम भट्टारक का सिंहासन है । अग्रमहिषी असंधिमित्रा प्रतिदिन परम भट्टारक के साथ स्थविरों और अर्हंतों का विधिवत् अर्चना कर रहे हैं । प्रतिदिन ही आचार्यों को सुगंधित पुष्पाजंलि नगर-प्रमुख एवं नागरिक भेंट कर रहे हैं । इस सबके अतिरिक्त आचार्य मोग्गलिपुत्र तिस्स स्थविरों, भिक्षु-भिक्षुणों और श्रमणों के साथ पृथक से विचार कर रहे हैं ।

इन विचार संगोष्ठियों चर्चाओं एवं प्रवचन स्तवनों का क्रम कई मास चलता रहा। आचार्यो ने "कथावस्तु" नए ग्रन्थ का प्रणयन किया । परम भट्टारक देवनाम् प्रिय, प्रियदर्शी की उपाधि से सम्मानित हुए ।

पाटलिपुत्र में स्थविर उपगुप्त के नेतृत्व में संधाराम की स्थापना हुई । उज्जयिनी, विदिशा, महिष्मती, काकनद एवं पद्मावती आदि जनपदों में संध की उपशाखाएं गठित की गई ।

बौद्ध-धर्म राजधर्म घोषित हुआ ।

राजाज्ञा प्रसारित हुई । धर्म राजिकाओं, संधारामों, चेत्यों का निर्माण प्रारंभ हो। बड़े जनपदों में स्तूप निर्माण कर अर्चना हेतु तथागत के अवशेष स्तूपों में प्रवारीत किए जाए जिनमें भगवान बुद्ध के जीवन का प्रतीकात्मकशिल्पी-करण हो । पर्वत शिलाओं, पाषाण-स्तंभों तथा गुहाओं में धार्मिक उपदेश अंकित हो । इन आलेखों की भाषा जनभाषा पाली तथा लिपिब्रह्मी रहे । संघ के द्वार समाज के सभी वर्गो के लिए खुले। हों । मनुष्य ने मनुष्य मनुष्य के बीच जो विभाजन रेखाए खींच दी है, वे मिटा दी जाएं। तक्षशिला विश्वविद्यालय तथा अन्य महाविद्यालयों, अध्ययनकेन्द्रों में अभिजात,

कुलीन, शूद्र एवं चांडाल सभी को प्रवेश का समान अधिकार हो । ''बहुजन हिताय: बहुजन सुखाए'' राज्य का आदर्श रहे । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चिकित्सालयों, विश्रामगृहों, राजपथों, कुओं का निर्माण एवं पर्यावरण हेतु वृक्षारोपण, अशोकारामों का प्रबन्ध अपेक्षित रहेगा ।

पाटलिपुत्र में समायोजित तृतीय बौद्ध संगीति में किये गए निर्णय के अनुसार जैसा संगीति के अध्यक्ष स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स के परामर्श से सिंहल, बर्मा, सीरिया, मिश्र, आदि पड़ोसी देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए प्रचार मंडल भेजे जाए । जम्बु द्वीप में स्थविरों की नियुक्ति इस प्रकार हो: कश्मीर राज्य में मंझतिकण गंधार में महारक्षित, अपसेतु तथा महाराष्ट्र में धर्मरक्षित एवं महारक्षित उपाचार्य धर्म-प्रचार का नेतृत्व सम्हालें जिनकी सहायता धर्म-महामात्य करेंगे ।

परम भट्टारक स्वयं विदिशा जाएगे । साथ होगे आचार्य उपगुप्त । उनकी आज्ञा प्राप्त कर शाक्यानी महादेवी भव एवं विभव तृष्णा से मुक्ति पाने हेतु प्रवज्या ले रही है, आचार्यत्व करेंगे स्थविर उपगुप्त । शाक्यानी के साथ कुमार महेन्द्र एवं कुमारी संघमित्रा जिन-शासन में दीक्षित होगे ।

निर्धारित मुहूर्त में प्रवज्या उत्सव में विदिशा पहुँच गए हैं परम भट्टारक । वर्षों बाद कितने परिचित, अपिरचित, सुपरिचित मुख देख रहे हैं परम भट्टारक । वैसी ही सजी हुई है विदिशा नगरी, तोरण एवं स्वागत द्वार, पूर्ण कुंभ और घृतदीप अगरू, गंध,आरती । सुगंधित पुष्पमालाए किन्तु आरती उतार रही है शाक्यानी के स्थान पर श्रेष्ठी की वधुलक्ष्मी रंजना । पुरानी स्मृतियां जाग रही हैं परम भट्टारक के मन में। उनकी आंखें सतत खोज रही हैं महादेवी शाक्यानी को । पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को। स्वागतार्थ नही आई शाक्यानी ?

कितनी बार विदिशा आए परम भट्टारक उज्जयिनी से । कितनी बार नगर श्रेष्ठी भद्रसेन की अतिथि शाला में वे रुके है ? कितनी रात्रियाँ शाक्यानी के साथ उद्यान में पुष्करणी के निकट जागते हुए बीती हैं ? किन्तु शाक्यानी आज परम भट्टारक एवं स्थविर उपगुप्त के दर्शन प्रवज्यास्थल पर ही करेंगीवीतरागीशाक्यानी स्वयं में ही स्थिर रहना चाहती हैं । परम भट्टारक अपने स्वजनो में रहे । जीवन में राजमहल के ऐश्वर्य को भोगे ।......

सम्पूर्ण समष्टि और जन-जन शाक्यानी का अपना परिवार है, अपने स्वजन हैं । परम भट्टारक की उत्सुकता द्विगुणित हो उठी है । प्रवज्या मंडप में आ विराजे हैं परम

भट्टारक। सारी व्यवस्था भिक्षु अलिन्द ने कर रखी है । स्थविर उपगुप्त ऊँचे काष्ठ पीठ पर आसीन हैं । साथ है उनके अनेक शिष्य । अब प्रवज्या विधि आरंभ होने में विलम्ब नही हैं ।

ऋजुमती है शाक्यानी । बुद्धघोषित नमि-प्रवज्या की अधिकारिणी, मानसिक द्वंद्वों के शमन हेतु वे जिन-शासन में पति की अनुमति से दीक्षित हो रही है पुत्र महेन्द्र एवं संघमित्रा उसी ऋजुता को धारण करने हेतु तत्पर हैं । वे स्वेच्छा से ऐसा कर रहे हैं।

परम भट्टारक के जयघोष के साथ श्रवण श्रमणियों के कंठ से समवेत मंत्र गूँजा- बुद्धं शरंण गच्छामि, संघ शरणं गच्छामि, धम्म शरंण गच्छामि । परम भट्टारक ने स्वयं अपना स्वर दिया एवं वे भी मंत्रोच्चार कर उठे । धर्म वेदिका पर उपस्थित हैं कषाय, चीवर पहने शाक्यानी ।

मस्तक पर श्वेत चन्दन अनुलेपन, एवं भाव विहीन गांभीर्य । महेन्द्र एवं संधमित्रा उसी वेश में हैं । परम भट्टारक को सम्मुख देख प्रणाम कर रही हैं शाक्यानी । यही तुम्हारे तात है वत्स ।'' वाक्य सुनकर महेन्द्र और संघमित्रा भी प्रणाम की मुद्रा में है।

''तुमने भली प्रकार सोच लिया है पुत्री ?

धर्म प्रवर्तक के महान कार्य के लिए तुम तत्पर हो ? पूरे मनोयोग में आजीवन यह वृत पूरा करोगी ? पूछ रहे हैं आचार्य उपगुप्त । ''

''जी, आचार्य प्रवर ।''

''आपके पति की अनुमति है ?''

''जी आचार्य प्रवर ।''

''और निज पुत्र पुत्री पर तुम्हारा पूर्ण अधिकार है, जिन्हें श्रमण धर्म के लिए तुमने उन्हें प्रेरित किया है ।

''अधिकार हैं आचार्य ।''

''बुद्धं शरणं गच्छ ।'' स्थविर उपगुप्त ने तीन बार उच्चारित किया एवं पवित्र जल तीनों पर छिड़का ।'' आप तीनों को मैं स्थविर उपगुप्त संघ प्रवेश की अनुमति प्रदान करता हूँ । और मानव-मात्र के कल्याण हेतु आहवान करता हूँ ।''

''हम तत्पर हैं आचार्य ।''

''तथास्तु ॥ शुभं भवतु ॥ स्वस्ति भवतु ॥।

प्रवज्या विधि पूर्ण हुई । सम्पूर्ण मंडप मंत्रोच्चार से गूँज उठा । आर्द्र-नयन परम भट्टारक सब कुछ देखते रहे । शाक्यानी से अपनी कठोरता से लिए क्षमा मांगने को

विकल हैं महाराज.। वे विकल हैं महेन्द्र एवं संघमित्रा को आलिंगन में लेने हेतु। हृदय का सम्पूर्ण अवसाद और क्षोभ नेत्रों की राह बह निकला हैं।

नगरवासियों, भिक्षु-भिक्षुणियों, श्रमणों श्रावको एवं श्रेष्ठी परिवार के साथ सामूहिक भोजन कर रहे हैं परम भट्टारक। दुग्ध एवं फल ही स्थविर उपगुप्त, भिक्षु अलिन्द एवं पुत्र पुत्री सहित शाक्यानी आहार में ग्रहण कर रहे हैं। विदा के पूर्व शाक्यानी से बातें करने को उत्सुक है परम भट्टारक।

''न मैं विदिशा के महाश्रेष्ठी भद्रसेन की पुत्री हूँ, न अब परम भट्टारक.की पत्नी, न किसी की माता, न भगिनी। साधारण जन की सेवार्थ स्वयं को अभ्यस्त करती रही हूँ।

शेष जीवन, जो अभिजात नही है, अथवा अकुलीन है, जो अपनी विषम परिस्थितियों में मौन रह जाते है, तथापि स्वयं में संतुष्ट है, उन्हीं की सेवा के लिए अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा थी मुझे आचार्य।'' शाक्यानी स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स एवं आचार्य उपगुप्त को विदा दे रही हैं।

स्थविर उपगुप्त ने कहा-''तथागत के धर्मचक्र में इसके अवसर ही अवसर हैं पुत्री। अपनी रुचि का क्षेत्र चुनकर कार्य आरंभ करो। त्रिशरण नें जाने से मन को शान्ति मिलेगी। लोक तथा आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा।''

''मैं इसी क्षेत्र में रहना चाहती हूँ भन्ते। जिस भूमि में जन्मी, संस्कार पाया वहीं के निवासियो की सेवा मेरा वृत होगा। सातिपुत्र की उपत्यिका चेत्य गिरी काकनद, वही मेरी जन्मस्थली है। वह छोटा सा जनपद। निर्धन वनवासियों की भूमि। मैं निवास भी वही करूँगी, जिससे सर्वसुलभ रहूं। विदिशा में रहने का अब कोई अर्थ नही हैं।''

''विचार उत्तम हैं। इसकी व्यवस्था हो सकेगी राजन् ?''

स्थविर ने परम भट्टारक से पूछा, जो निकट खड़े सारा वार्तालाप सुन रहे थे। शाक्यानी के कथन को आत्मसात करते हुए। स्थविर के इस प्रश्न ने परम भट्टारक को एक और अवसर दिया, यह बताने के लिए कि वे शाक्यानी की इस इच्छा से संदर्भित हैं। निरे अप्रासंगिक नहीं हैं वे।

''व्यवस्था क्यों नहीं हो सकेगी आचार्य श्री। काकनद की चेत्यगिरी वाली भूमि में शाक्यानी स्वतंत्र एवं निर्भय संचरण करेंगी। उसी संचरणी पर अपने समय का हम प्रथम स्तूप निर्मित करायेगे, जिसमें तथागत के अवशेष स्थापित होंगे।

अत्यन्त कलात्मक और सुन्दर वह कृति होगी। तोरण द्वारों, तथा पाषाण-

वेष्टिनियों से परिवेष्ठित यह स्तूप अद्‌भुत होगा जिसमें संकेतो में शिल्पीकृत होगे भगवान बुद्ध के जीवन प्रसंग। पाषाण स्तंभ पर उत्कीर्ण होगा जनभाषा पाली में धर्मोपदेश। इस कार्य के लिए कुशल शिल्पियों की राज्य द्वारा व्यवस्था होगी, एवं सारा व्यय राजकोष उठाएगा। इसी परिसर में बनेगा विशाल संघाराम।''

उपस्थित जन समुदाय परम भट्टारक की घोषणा सुन ''साधु-साधु'' कह उठा! स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स के मुख पर संतोष की भावना उभर आई। शाक्यानी ने तृप्ति-भाव से परम भट्टारक की ओर प्रथम बार देखा।'' काकनद की जनता की ओर से मैं कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहती हूँ महाराज। मेरा अभिप्राय पूर्ण हुआ।''

''इसमें कृतज्ञता कैसी भद्रे। आपका और मेरा अभिप्राय भिन्न है भी नहीं। प्रजाहित की ओर प्रेरित करने के लिए आभार तो मुझे मानना चाहिए।'' परम भट्टारक ने उत्तर दिया।

''आपसे यही आशा है राजन्। आप प्रजा के संरक्षक हैं। महादेवी शाक्यानी का प्रस्ताव आपकी अध्व मात्रा का प्रथम चरण है और भावी का दिशा संकेत।'' स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स ने कहा-फिर शिष्यों सहित चलने को उद्यत हुए। प्रणाम, अभिवादन के उत्तर में सस्मित अभय मुद्रा में हाथ उठाये हुए। प्रथम सामूहिक मंत्रोच्चार हुआ फिर परम भट्टारक का जयघोष।

स्थविर राजपथ पर चले जा रहे हैं। पीछे पीछे अर्हतों का छोटा सा-दल। आधी घड़ी बीतते बीतते दृष्टि से ओझल होती जा रही हैं वे आकृतियां। जन समुदाय अपने भवनों को लौट रहा है। परम भट्टारक रात्रि को महाश्रेष्ठी की अतिथि-शाला में विश्राम करेंगे। प्रत्यूष के पूर्व ही पाटलिपुत्र की ओर प्रस्थान करेगा उनका रथ, अंग-रक्षकों के साथ।

उद्यान के बाहर अस्थायी संघाराम में ठहरे हुए हैं स्थविर उपगुप्त। संघाराम के एक कक्ष में शीतल-पाटी बिछाए शयन को उद्यत हैं शाक्यानी, एवं उनके पुत्र-पुत्री जिन्होने श्रावक का व्रत लिया हैं।

महादेवी शाक्यानी की इच्छा पूरी हुई। प्रथम बार जैसे परम भट्टारक पर गर्व हो रहा है शाक्यानी को। न जाने कबतक उस रात्रि में जागती रही महादेवी शाक्यानी?..........

दस

काकनद में चैत्यगिरि के शिखर पर विस्तृत समतल भूभाग में देवानां प्रिय परम भट्टारक के आदेशानुसार स्तूप-निर्माण की तैयारियां पूर्ण होने को हैं । विदिशा, उज्जयिनी, महिष्मती अदि जनपदों के अग्र-श्रेष्ठी स्वेच्छा से स्तूप निर्माण के लिए धन देगे । इस धर्म कृत्य में उनका योग स्वीकार्य होगा । परम भट्टारक के प्रति अपार श्रद्धा के कारण ही यह सब संभव हुआ है । नागरिक, कुलवधुए, तपस्वनियां, सभी सहायतार्थ उद्यत हैं । कोई किसी से पीछे नही रहेगा ।

आचार्य उपगुप्त, अमात्य सुबृत दोनो के मार्गदर्शन में योजना का क्रियान्वन होगा। आन्ध्र के राज्य शिल्पी पट्टनायक सारंग प्रमुख शिल्पी होंगे स्तूप के निर्देशक जिन्हें इस कला का प्रचुर अनुभव हैं । अमरावती जैसे नगर में शिलाखंडों में तथागत के जीवन-प्रसंगों के प्रतीकात्माक शिल्पीकरण की योजना उन्हीं की हैं ।

यही है महावंशी का सघन-वन । अशोक, वकुल और प्रियंगु से घिरा वन । मदार और शिरीष के पुष्पों की गंध लिए हुए । शिल्पियों, श्रमिकों एवं तक्षकों के लिए पर्णशालाएं निर्मित हो चुकी हैं । वापी, उद्यान, पाक्-गृह, पशुशाला एवं अस्थायी आवासों से जीवन्त हो उठा है अब चैत्यगिरी । यहीं परिसर में चैत्य के निर्माण की योजना है जहां निवास करेगी स्वयं श्रमणी शाक्यानी ।

विशाल स्तूप, लघुस्तूपों एवं तोरण द्वारों की अनु-कृतियां वस्तु-कला शास्त्र के प्रमाणानुसार स्थविर उपगुप्त के परामर्शनुसार निकटस्थ अभिमंत्रित भूखंड पर रेखा कृतियों में अंकित की जा चुकी हैं, जिनके अनुरूप वास्तविक निर्माण संभव होगा ।

प्रमुख स्तूप में प्रस्तर मंजूषा में अर्चना हेतु तथागत के पवित्र अवशेष प्रविष्ट रहेंगे। अन्य दो लघु-स्तूपों में तथागत के शिष्य द्वय सारिपुत्र एवं मौग्गलायन के पवित्र भस्मावशेष रखे जावेगे ।

अग्रशिल्पी भट्टारक पट्टनायक सारंग काकनद में सपरिवार आए हैं । पत्नी विशाल और पुत्री मंजरी साथ हैं । विशाला ने श्रमिको, तक्षकों और अन्यान्यों की भोजन-व्यवस्था का भार ले लिया है । ममतामयी, मातृत्व की साकार मूर्ति-सी हैं । विशाला। सबको वैसा ही स्नेह बांटती हैं । माता का हाथ बटाती है मंजरी । यदि अग्रशिल्पी सारंग समस्त आंन्ध्र प्रदेश के प्रखर प्रतिभा सम्पन्न अमरावती तथा अनेक

शिल्पों के ख्यातिनामा शिल्पी हैं, जिन्हें गोलाकार शिल्प एवं शिला-फलक का सम्पूर्ण ज्ञान है तो उनकी युवा पुत्री मंजरी नृत्य-संगीत में निपुण है। पट्टनायक परिवार को शैव होते हुए भी भगवान बुद्ध की आराधना एवं हीनयानी बौद्ध शिल्प संस्कार उन्हें महाराष्ट्र के प्रतिष्ठानपुर से मिला है जहां उनके पूर्वजों का मूल निवास रहा था।

वैशाख शुक्ल पूर्णिमा का मंगल प्रभात। आज ही चैत्यगिरि पर विशाल स्तूप के निर्माण-कार्य का शुभारंभ होगा। प्रभात की प्रथम किरण पृथ्वी पर अवतरित होगी, उसी के साथ स्थविर उपगुप्त अपने हाथों पर्वत की पर्त उत्कीर्ण करेगें।

आमात्य सुबृत युवराज कुणाल को सादर ले आए हैं। वे ही परम भट्टारक का प्रतिनिधित्व करेगे इस मांगलिक अवसर पर। श्रीफल, गंध, अक्षत और पुष्प थाल में सजाए खड़ी है मंजरी। वही स्थविर की सहायता करेगी।

चारण ने तूर्य बजाकर युवराज कुणाल के आगमन की सूचना दी। "सावधान मगध के युवराज कुणाल पधार रहे हैं।" युवराज ने अपना रथ चैत्यगिरि के नीचे ही रुकवा दिया है। रथ से उतर कर वे पैदल ही शिलान्यास के स्थल तक आ पहुँचे हैं। "परम भट्टारक की जय हो ? युवराज कुणाल की जय हो।' उपस्थित जन जयघोष कर उठे हैं।

आमात्य सुबृत एवं अग्रशिल्पी सारंग के साथ कुणाल आ पहुँचे। सविनय प्रणाम की मुद्रा में उनके दोनों हाथ और स्मित बदन उनके मनोरम विशाल नेत्र उठे। सर्व प्रथम स्थविर उपगुप्त को शीष झुका कर नमन किया।

"आयुष्यमान भव।" कहा स्थविर ने। अग्रशिल्पी के संकेत से मंजरी सम्मुख आई। अब आचार्य से अनुरोध कर रहे हैं युवराज निर्माण के शुभारंभ की विधि आरंभ करने का।

लता-पताकाओं से सुसज्जित उस स्थान पर स्थविर उपगुप्त ने प्रथम तो जलसिंचित कर भूमि पूजन किया। फिर शिला पर श्रीफल, गंध, अक्षत बद्ध पुष्प प्रेषित कर रजत हथोटिका से प्रहार किया। उस स्थान पर एक चिन्ह अंकित हुआ। पुलक से श्रमणियों ने मंत्रोच्चार किया। मंजरी ने स्वयं घृत दीप जलाकर उस स्थान पर रख दिया। और फिर सुवासित गंध मिश्रित रक्त चंदन तिलक युवराज, आमात्य और तात सारंग सहित प्रमुख नागरिकों के मस्तक पर अंकित किया। प्रसाद ग्रहण करने हेतु अतिथियों से विनय कर रहे है पट्टनायक सारंग। भोजन शाला का मार्ग दिखा रही उनकी आत्मजा मंजरी। प्रसाद ग्रहण से ही समाप्त होगा यह मंगल अनुष्ठान।

आगन्तुकों अतिथियों का स्वागत सत्कार कर रही है स्वयं विशाला। वे स्वयं सबके हस्त प्रक्षालन करा रही है। अतिथियों की पंक्ति में सबसे पीछे खड़े हैं मगध के युवराज कुणाल। अंत में बारी आ पहुँची है युवराज की। तात सारंग के संकेत से विशाला रुकी। उनका अभिप्राय समझ कर मंजरी ने युवराज को अर्ध्य दिया। सहसा उसकी दृष्टि युवराज कुणाल की ओर गई। पलभर को वह दृष्टि उनकी दृष्टि से मिली और स्थिर हुई। फिर हठात मंद हास्य मंजरी के सुन्दर मुख से मुखर हुआ। युवराज ने मौन से ही तृप्ति का अनुभव किया। केवल युवराज ही ने नहीं, स्वयं मंजरी ने भी। जैसे किसी नवीन चेतना का संस्पर्ष मिला हो मंजरी को। संस्पर्षजीवी है मंजरी और उसकी कला। अनुभूतियों की वास्तविकताओं को प्रत्यक्ष करने में कुशल है मंजरी। आधी घड़ी में ही यह सत्य जान गए युवराज जब उस पर्णशाला में ही मंजरी के कंठ से करुण गीत निसृत हुआ। श्रोता उस रस गंगा में डूब गए, और ठगे से बैठे रहे स्वंय युवराज कुणाल।

''साधु साधु'' उपस्थित जन पुकार उठे। स्थविर उपगुप्त के निकट जाकर नमन किया मंजरी ने। आशीर्वाद की मुद्रा में उनका सीधा हाथ उठा। फिर विनय से मस्तक झुकाए सुस्थित खड़ी हूई युवराज के सम्मुख मंजरी।

युवराज ने प्रतिनमन सा किया। वे आत्म-विस्मृत से बैठे रहे। शनैः शनैः अतिथि जाने लगे। आमात्य की आशा से चारण ने युवराज के प्रस्थान की सूचना का तूर्य बजा दिया।

स्थविर उपगुप्त एवं भिक्षु-भिक्षुणियों के संचरण से अटवी में जीवन आ गया है। वनवासी और काकनद के ग्राम्यजन प्रतिदिन ही पुष्प और फल, अथवा गायों का दुग्ध लाते हैं और भेंट करते हैं विशाला को जिससे वे उस सामग्री का सदुपयोग कर उन्हें कतार्थ कर सकें।

विशालकाय स्तूप का सानुपातिक निर्माण चल रहा है। इंटों और वज्रलेप से वह शनैः शनैः आकार ले रहा है। मुख्यशिल्पी सारंग के नेतृत्व में जम्बुद्वीप में सर्वश्रेष्ठ बौद्ध स्तूप का निर्माण अपने आप में अभूतपूर्व धटना है। अनेक कुशल तक्षक एवं मूर्तिकार चुनार से लाये गये शिला खंडों को विशिष्ट आकृतियां दे रहे हैं। मूल शिला से संपृक्त मानव के दैनंदिन जीवन की साधारण परिस्थितयों और घटनाओं को वे समावित करने में प्रति दिवस प्रयत्नशील हैं।

प्रेम-घृणा, संयोग वियोग, मित्रता शत्रुता, नृत्य गान, वीणावादन, प्रसाधन और

क्रीड़ाएं सभी प्रसंग प्रस्तर खंडो में उत्कीर्ण हो रहे हैं ।

लगभग प्रतिदिन ही प्रगति के अवलोकन हेतु उज्जयिनी से रथ पर आते हैं युवराज कुणाल। प्रतिदिन ही मंजरी से उनकी भेंट होती है। प्रतिदिन की यह भेंट मैत्री में परिणित हो रही है । आतिथेय है मंजरी और अतिथि होते हैं युवराज । तीव्रगति से चल रहा है निर्माण कार्य ।

उस रात्रि अस्थाई अतिथिशाला में विराम लेंगे युवराज । अपने नृत्य प्रदर्शन से शिल्पियों, श्रमिकों का मनोरंजन करेगी मंजरी । उनके श्रम का परिहार होगा । भोजनोपरांत यह मंजुवाणी सम्पन्न होगी । बचपन से ही विशाला ने संगीत नृत्य का अपनी पुत्री को संस्कार दिया है और किया है संस्कृत एवं तेलुगु पदों के सुललित गायन का अध्याय । नृत्य-संगीत-अभिनय-की त्रिवेणी प्रवाहित करने की क्षमता मंजरी में हैं ।

पार्श्व में श्वेत वस्त्रों को तानकर यवनिका का रूप दे दिया गया है । काष्ठ फलक परस्पर जोड़कर शिला वेदिका बनी है । ज्योति शलाकाओं से प्रकाशित है वह मुक्ताकाशी दीर्घा । श्रृंगार, भक्ति और वैराग्य समन्वित भागवन्मुख नृत्य प्रस्तुत कर रही है मंजरी । मृदंगम और मंजीर की ताल और गति पर लयात्मक श्लोक-गायन कर रही है स्वयं विशाला । सारा जनसमुदाय साधु साधु पुकार रहा है । मंजरी के प्रति आदर से अनुरक्त चले हैं युवराज । आत्म विभोर से उनके विशाल नेत्र अधिक उज्जवल से हो उठे हैं । नृत्यरत मंजरी इस सबसे अनभिज्ञ नही है । नृत्य समाप्त होते ही करतल ध्वनि हुई । युवराज जैसे किसी स्वप्न से जागे । तभी आमात्य ने संकेत किया । युवराज विश्रामालय जाने को उठ खड़े हुए ।

"तुम्हारी कला अद्वितीय है भद्रे ।" बोले युवराज ।

"आपकी कृपा हुई आर्य ।" उत्तर में मंजरी ने कहा ।

युवराज अश्वारूढ हो चल दिये ।

प्रातः अटवी में एकाकी भ्रमण को निकल पड़े हैं युवराज कुणाल । सामने ही सद्य-स्नाता मंजरी चली आ रही है । युवराज को देखकर वह रुकी । फिर युवराज को प्रणाम किया ।

"क्षमा करें, विलम्ब के कारण गतरात्रि हम रुक न पाए । उज्जयिनी लौटने के पूर्व तुमसे भेंट करने की साध थी, पूरी हुई ।"

"वह तो जब भी युवराज चैत्य-गिरी आते हैं, होती ही है ।"

''किन्तु इस भेंट को हम अविस्मरणीय बनाना चाहते हैं भद्रे।''

''केवल मंजरी कहें युवराज।

''स्मरणीय बनाना चाहते हैं वह कैसे ?''

''यह रत्न-हार तुम्हारे लिए है मंजरी।''

''युवराज की अनुग्रहीत है इस कृपा के लिए यह मंजरी। किन्तु क्षमा करें, यह उपहार लेने में असमर्थ हूँ मैं। मैं इसकी अधिकारिणी नहीं।''

''तुम क्यों नहीं अधिकारिणी हो मंजरी ? किसी का भय है क्या ?''

''भय किसी का नहीं। अपना भी नहीं। आपके प्रति मेरे मन में स्नेह और श्रद्धा न हो, ऐसा भी नही है। किन्तु वह स्नेह और श्रद्धा अनाम ही रहने दें आप।''

''अनाम रहने का अर्थ सुख-सुविधाओं का तिरस्कार है क्या। सम्पन्नता से उदासीन रहना चाहती हो मंजरी ? वह कौनसा संस्कार है जो तुम्हे रोक रहा है ?''

केवल सुख सुविधाएं जीवन को समृद्ध नहीं करते युवराज। मूल्य जीवन को समृद्ध करते हैं। मैं अभिजात तो नहीं, किन्तु इतना जानती हूँ, संस्कार आत्मा का होता है। वह स्त्री और पुरुष कुलीन और अकुलीन में भेद नहीं करता। अतः आत्मा के स्तर पर हम अविभाज्य हैं। सम्पन्नता से उदासीन भी नहीं हूँ मैं, किन्तु सतर्क अवश्य हूँ।

''प्रवृति भी, निवृत्ति भी। यह कैसा उभय-धर्म है तुम्हारा मंजरी ?''

''आपका समस्त गुण-सौंदर्य मेरा ही है युवराज, आपकी प्रतिष्ठा मेरी ही प्रतिष्ठा है। उसे जन प्रवाद बनाकर कलंकित नहीं करूँगी। आपके भावी साम्राज्य और उस साम्राज्य के सिंहासन के अर्द्धभाग की अधिकारिणी बनने की रंचमात्र भी आकांक्षा नहीं है मुझमें। अतः प्रवृति होते हुए भी निवृत्ति का भाव मेरे अनुराग के मूल में है। तथापि, आप मेरे वरण्य पुरुष हैं, और रहेंगे।''

''किन्तु इससे जो द्वंद्व जन्म लेगा उसका शमन कैसे करोगी मंजरी ?''

''इस द्वंद्व से ही एक अपूर्व एवं सर्वथा नवीन जन्म लेने लगता है युवराज। जो घटित होगा उसकी प्रतीक्षा करूँगी मैं। और आप नए नए उत्तरदायित्वों में सबकुछ विस्मरित कर देगे-किन्तु मैं नही भूलूंगी-। नारी कभी नही भूलती युवराज।''

''भूलता पुरुष भी नही है किन्तु भूलने का अभिनय अवश्य करता है मंजरी।''

उज्जयिनी प्रस्थान की बेला में मंजरी दिखाई नहीं दी। युवराज की आंखे खोजती रही। मार्ग में रथ पर आरूढ जाते हुए युवराज को मंजरी के सम्पूर्ण कथन याद आने

लगे। किस शालीनता से परस्पर भेद की रेखा खींचकर यह कैसी निकटता स्थापित कर ली है मंजरी ने। तथापि, सभी मनोरथों और उनके पूर्ण होने की समस्त संभावनाओं का यह कैसा निषेध है ? क्या मानव मन की किन्हीं सीमाओं में बांधा जा सकता है? सीमाएं भी ऐसी जो उसे मुक्त भी करें ?

"युवराज की जय हो।" राजभवन के द्वार पर आचार्य सुवृत पधारे हैं स्वामी।" प्रतिहारी ने सूचित किया।

युवराज तुरन्त उठे और द्वार पर पहुँचे। पाद-प्रक्षालन कर गुरु वंदना की और कक्ष के भीतर सादर लिवा लाए।

"कैसे कृपा की गुरुदेव। मुझे क्षमा करें, चेत्यगिरी आने-जाने में समय बीतता रहा। गुरुकुल आकर आचार्य के दर्शन नहीं कर पाया।"

"आपका अध्ययन पूरा हुआ युवराज। जो कुछ मेरे पास था, मैने आपको दिया। एक उत्तरदायित्व शेष है जिसे पूर्ण करने चला आया।" आचार्य ने कहा।

"गुरुकुल के लिए धन चाहिए आचार्य ? आपका उत्तरदायित्व मेरा भी है।"

"नहीं। गुरुकुल के लिऐ धन की कमी नही है।

उत्तरदायित्व परम भट्टारक ने सौंपा है ?"

"पिताश्री ने कौन सा उत्तरदायित्व आपको सौंपा है आचार्य ?" जिज्ञासु दृष्टि से युवराज ने आचार्य की ओर देखा।

"परम भट्टारक की इच्छा है, आप मेरे साथ महिष्मती चलें और क्षत्रप अभिसेन का आतिथेय स्वीकारें। महिष्मती भ्रमण के साथ अभिसेन के परिवार का परिचय भी प्राप्त करें।"

"इस सबका प्रयोजन ?"

"प्रयोजन अत्यन्त शुभ है युवराज। अभिसेन अपनी राजकन्या कंचनमाला से आपका परिणय करने की प्रबल इच्छा रखते हैं, परम भट्टारक की सहमति भी है। महाराज का अनुरोध है आप स्वयं चलकर संतुष्ट हो ले जिससे भावी का मार्ग प्रशस्त हो।"

"आपकीसम्मति क्या है गुरुदेव ?"

"राज कन्या अत्यन्त सुन्दर है। सुन्दर और गुणवती भी। मुझे तो यह प्रस्ताव उपयुक्त लगता है। कल प्रातः शुभ मुर्हूत है। यदि युवराज को स्वीकार्य हो महिष्पति की यात्रा के प्रबन्ध का आदेश दिया जावे।

"इतनी शीघ्रता क्यो ?"

"शीघ्रता इसलिए कि राजमहिषी युवराज की मातुश्री पदमावती प्रायः अस्वस्थ रह रही हैं। परम भट्टारक की तीव्र इच्छा है यह शुभकार्य शीघ्र संपन्न हो जिससे राजमहिषी सुखी हो सकें।"

"ठीक है। पिताश्री और आपकी आज्ञा का पालन हम करेगे।" कहते हुए युवराज कल्पना में खो गए।

ग्यारह

आचार्य सुधर्म सहित महिष्मती पधारे हैं युवराज कुणाल। नगर द्वार पर वंदनवार से सजे मंडप में उनके स्वागत की व्यवस्था की गई। दीपक भरे पूर्ण कुंभ उठाए स्वागत कर रही हैं दो स्त्रियाँ। अर्ध्य देकर आरती करेगी क्षत्रप अभिसेन की राज-कन्या कंचनमाला। उनके पीछे है माता और क्षत्रप परिवार की अन्य स्त्रियों मंगलगान करती हुई। अभिसेन सहित सारा जन समुदाय युवराज को देखकर प्रसन्न और प्रफुल्लित है। राजकन्या और युवराज दोनो एक दूसरे के सर्वथा योग्य हैं, फुसफसा कर गंतव्य प्रकट कर रही है कुलवधुए, प्रौढ़ाऐ। निरन्तर पुष्प वर्षा हो रही है।

आरती का शिष्टाचार पूर्ण हुआ। राजकुमारी कंचनमाला जाने को हुई। युवराज ने उनकी ओर देखा, सुन्दर मुख, बड़ेबड़े नेत्र भावमय, कानों को छूती बरोनियों, वेणी बन्ध केश, पुष्प-सज्जित, कानो में कुंडल, वक्ष पर मुक्ताहार, चीनांशुक में सयत्न बंधे पुष्ट उरोज, कुसुमश नीवीबंध पर हेम-मेखल, पैरो में किंकणियों। देखा युवराज ने। कुछ पल देखते रहे। क्षत्रप अभिसेन ने पुष्पहार पहनाकर भेंट-स्वरूप रत्नों से भरा थाल युवराज के आगे किया। वे तनिक ठिठके। आमात्य ने परामर्श दिया-"यह यहां की परम्परा है। युवराज कृपया भेंट स्वीकार करें।"
युवराज ने थाल का स्पर्श कर हाथ से मस्तक का स्पर्श किया। थाल चारण ने ले लिया।

पयस्वनी नर्मदा का तट।

तटी के उत्थान के मध्य स्थित है क्षत्रप अभिसेन का राजभवन। युवराज इसी भवन में अतिथि हैं। उनकी सुख-सुविधाओं का दायित्व स्वयं राजकुमारी कंचनमाला वहन कर रही है। उनके स्नेहिल स्वभाव, बुद्धिमता एवं मेघा को जान गए हैं युवराज कुणाल। प्रतिभा और सौंदर्य दोनों ही पूर्ण रूप से विद्यमान है कंचनमाला के मोहक व्यक्तित्व में। युवराज को राजकुमारी की बातों में रस आने लगा है।

संध्या का समय है। उद्यान के मध्य स्थित आम्र कुंज में बैठे हैं युवराज कुणाल। निकट ही पीठासीन है राजकुमारी कंचनमाला, वीणावादन कर रही हैं कांचनमाला। विलंबित से द्रुत की और जाते जाते तन्मय हो रही हैं राजकुमारी काचंनमाला उस प्रवाह में जैसे सबकुछ बहा ले जाने की क्षमता है। युवराज का मन भी केन्द्रित हो रहा है। राजकुमारी की अंगुलियां वीणा के तारों पर विद्युत की गति से नृत्य कर रही हैं। स्वर लहरियों से सम्पूर्ण वातावरण झंकृत हो रहा है। सम पर आकर एक मूर्च्छना के साथ तार अन्तिम बार झनझनाए फिर मौन छा गया।

"अति सुन्दर" युवराज कह उठे। "तुम्हारे वीणा-वादन की अनुगूंज़ अब भी सुन रहा हूँ। कितनी व्याकुलता और व्यथा भरे थे तुम्हारे मधुर स्वर ?"

"किन्तु कदाचित वह व्याकुलता और व्यथा आराध्य तक पहुँची नहीं ?"

"यह तुमने कैसे जाना ?"

"आराध्य ने स्वयं को व्यक्त नहीं किया।"

"अव्यक्त रहने जैसा अब कुछ शेष ही नहीं रहा।" युवराज सस्मित़ राजकुमारी की ओर मुग्ध भाव से देखते रहे।" यदि ऐसा वीणा-वादन प्रतिदिन सुनने को मिले तो स्वयं को धन्य मानूँगा मैं, कहा युवराज ने।"

"भला आपकी अवज्ञा की सामर्थ्य किसमें है ?" अनुराग से राजकुमारी ने कहा। वे विस्मृत-सी हो उठीं।

"इसका अर्थ ?"

"इसका अर्थ मेरी पराजय।"

"नहीं, तुम्हारी जय, तुम्हारी कला की जय।"

अनुष्ठान पूरा हुआ। युवराज ने आमात्य को प्रस्ताव की स्वीकृति दे दी। उज्जयिनी लौट आए युवराज। अभिसेन ने इससे पूर्व वाग्दता के रूप में अपनी पुत्री कंचनमाला

को जाते समय युवराज के समक्ष प्रस्तुत किया। आचार्य सुवृत प्रसन्न हुए। परम भट्टारक को तुरन्त सूचना भेज दी गई। पुत्री के परिणय की तैयारी में जुट गए अभिसेन।

फिर युवराज काकनद में विहार कर रहे हैं। रात-दिन स्तूपों एवं चैत्यों का निर्माण कार्य चल रहा है। राजकोष के अतिरिक्त जनता भी धन देकर आर्थिक योग दे रही है, जिससे कलाकृतियाँ उत्कृष्टतम बनें। लोक जीवन के साथ-साथ, स्तंभों के लिए शीर्षस्थ पशु प्रतिमाएं, यक्षिणी के रूप में सजीव नारी प्रतिमाएं केश विन्यास की विविध वेणियाँ धारण किए हुए। अनन्त रहस्य भरे अभिप्रायों और प्रतीकों से सजी शाल मंजिकाए, अथवा अशोक वृक्ष की शाखा झुकती सुन्दरियां, बोधिवृक्ष, पादुकाएं, पगडी, छत्र, पद-चिन्ह और धर्मचक्र प्रवर्तन आदि प्रतीक। पाषाणों में प्राण फूंकने की साधना करते हुए अनेक शिल्पी-दोहरी सोपान, चार चतुष्कोणीय चार सुन्दर तोरण द्वारों की कल्पना को साकार करने में लीन। तथागत के जीवन संबंधी चार प्रमुख घटनाओं का प्रतीकात्मक शिल्पीकरण प्रस्फुरित होते हुए, कमल, अश्वत्थ, धर्मचक्र और स्तूप, जातिकर्म, संबोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन और फिर महापरिनिर्माण शिलाओं में उत्कीर्ण करते हुए। कितने गतिशील ? कितने मनोज्ञ शिल्पकला के धनी यह शिल्पी ? जड़ प्रस्तर में चेतन्य का भ्रम प्रदर्शित करते हुए।........

प्रत्येक कृति को देखने में रुचि ले रहे है युवराज। मंजरी स्वयं उनके साथ साथ घूम घूम कर सारे अभिप्राय स्पष्ट करती है। थककर किसी शिला खंड पर बैठकर विश्राम लेने लगते है वे दोनों। पुनः निर्माण के निरीक्षण में व्यस्त हो जाते हैं। विशाला स्वयं युवराज को सुस्वाद भोजन परोसकर खिलाती हैं। न जाने क्यों निरंतर विशाला को देखकर युवराज को राजमहिषी पदमावती, अपनी माता-याद आती है ? पाटलिपुत्र जाकर रोगग्रस्त माता के दर्शन के लिए उत्सुक हैं युवराज।

चैत्यगिरि पर स्तूप निर्माण के कार्य को दो वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके है। मुख्य स्तूप आकार ले चुका है। लघु स्तूपों का निर्माण कार्य चल निकला है। साथ साथ दक्षिण द्वार का प्रस्तर स्तंभ और चैत्यमंडप का निर्माण समाप्ति पर है। स्तंभ पर तथागत के उपदेश राजाज्ञाएं उत्कीर्ण होनी और शेष हैं। चैत्य मंडप में शाक्यानी स्वयं आकर विहार करेगी, भगवान बुद्ध के पवित्र अवशेष प्रतिष्ठ करने हेतु प्रस्तर मंजूषा निर्मित की जा चुकी है। स्थविर उपगुप्त प्रतिदिन ही निर्देश परामर्श देते हैं। प्रतिदिन ही वे सांयकाल स्तवन करते हैं। पर्वशालाएं संधाराम में परिवर्तित हो चुकी हैं।

"अहिंसा के वृत का मर्म है महाकरुणा। सर्वभूत दया महा करुणा की सर्वोच्च

स्थिति है । तथागत को इसी महा करुणा एवं आर्तता से संबोधि की उपलब्धि हुई थी। चित्त शुद्धि से विश्व कल्याण की भावना जागृत होती है । केवल एक ही वासना शेष रहती है, पर दु:ख में दु:खी होने की । शनै: शनै: अज्ञान की अवस्था समाप्त हो जाती है और तब वासना से भी निवृत हो जाता है जीव । वही पूर्ण प्रकाश की स्थिति है।''

''इस पूर्ण प्रकाश को प्राप्त करने का सहज मार्ग कौनसा है आचार्य ? प्रश्न कर रही स्थविर उपगुप्त से मंजरी ।''

''असीम के प्रति निरन्तर प्रेम, और उस असीम को जीव मात्र में देखना । अपने संचित पुण्य जीवन के अर्थ तक बांट देना ॥ संसार में रहते हुए भी निर्लिप्त और अविक्षिप्त रह पाना । असंग हो जाने पर भी ''नित्य'' के संग का ही भाव आत्म प्रतीति॥''

उसी से जीव पाता है अमरत्व ॥।

''अमरत्व क्या है आचार्य ?''

''स्वयं का निर्वाण हो जाने पर भी स्वयं का प्रकाशित बने रहना ही अमरत्व है पुत्री ।''

मंजरी के हृदय में आचार्य के प्रति क्रतज्ञता का भाव जागा । स्थविर को प्रणाम कर वह अपने आसन पर बैठ गई । मंत्रोच्चार और ध्यान कर स्थविर शिष्यों सहित उठ गए ।

परम भट्टारक का परम आवश्यक संदेश लेकर आए हैं महामात्य राधागुप्त । संदेश युवराज के लिए है । ''राजमहिषी की इच्छा है पाटलिपुत्र शीध्र लौटें युवराज कुणाल । किन्तु, अकेले नहीं । साथ है भावी युवराज्ञी कंचनमाला । परिणय की विधि महिष्मती में शीघ्र सम्पन्न करने हेतु राजपुरोहित साथ ही आए हैं । अब राजमहिषी पदमावती के पास प्रतीक्षा करने का अधिक समय नहीं है ।''

अप्रतिम से रह गए हैं सुनकर युवराज । विचारों में उलझे अनिद्रित पड़ें रहे हैं वे पूर्ण रात्रि ।

प्रात: की बेला में जीवन्त हो उठा है चैत्यगिरि । शिल्पी, तक्षक और मूर्तिकार व्यस्त हो गए हैं निज-निज कल्पनाओं को रूपायित करने के लिए । सृजन में तल्लीन। अत्यन्त सुखद लग रहा है अग्र शिल्पी सारंग को संपूर्ण दृश्य ।

वही सघन आम्रवन है । वैसे ही मंजरी स्नान कर पुष्पांजलि सजाए अर्चना हेतु देवमन्दिर की ओर जा रही है । उसी प्रकार उस पथ पर प्रतीक्षारत हैं युवराज कुणाल।

उज्जयिनी लौटने के पूर्व भेंट करना चाहते हैं एकान्त में। किसी विशिष्ट घटनाचक्र के घटित होने के पूर्व मंजरी से स्फूर्ति और स्पन्दन पाना चाहते हैं युवराज। उस आकर्षण में स्नेह और स्तुति का मिला-जुला भाव है।

"कुछ कहना था मंजरी, उज्जयिनी लौटने के पूर्व।"

"जानती हूँ, क्या कहेंगे युवराज ?"

बाबा ने रात्रि को ही बताया है, आपके परिणय का आदेश दिया है परम भट्टारक ने। यह भी जानती हूँ, महिष्मती की राज-कन्या कंचनमाला युवराज्ञी होने जा रही हैं।" अपने मुक्त केशों को पीछे हटा रही है मंजरी। जल सिंचित केश से वक्ष भीग चला है। अधिक आकर्षक लग रही है मंजरी और उसकी सद्य-स्नाता कमनीय देह।

"मुझे क्या आज्ञा दे रहे हैं युवराज ?"

पूछ रही है मंजरी।

"आदेश तो तुमसे प्राप्त करने आया हूँ मंजरी।" युवराज की वाणी आर्द्र हो उठी है।

"तो मेरा आदेश सुन लीजिए, पाटलिपुत्र से जब लौटें युवराज्ञी सहित सर्वप्रथम चैत्यगिरि आए जिससे अपने नेत्रों को मैं धन्य कर सकूँ।

"मुझे उस आदेश का ध्यान रहेगा।"

"एक अन्य आदेश भी है, आदेश कहूँ अथवा अनुरोध, अथवा प्रार्थना ?"

"कहो मंजरी शीघ्र कहो। महामात्य रथ लिए मेरी प्रतीक्षा में है।"

"सारे सुख आपके होगे, आप दोनों के। विषाद और दुखः के समय मैं आपकी स्मृति में रहूँगी। उसे बाटूँगी। यह मेरा अधिकार होगा। अब चलूँगी आर्य। मेरा पथ उस ओर है।" प्रणाम कर देवालय की ओर बढ़ चली मंजरी। युवराज ठगे से-देखते रहे। "अधिकार पाने का ढंग भी तुम्हारा अनूठा है मंजरी ! मैंने यह अधिकार तुम्हें दिया।" मन ही मन कह रहे हैं युवराज कुणाल।

प्रथम युवराज उज्जयिनी पुनः आ गए। फिर महामात्य, राजपुरोहित, महापौर एवं महामात्य के साथ महिष्मती की यात्रा। जिस यात्रा में एक बड़ा अर्थ छिपा है। अर्थ जो युवराज के जीवन को सार्थक करने की दिशा में संकलित करेगा। अर्थ जो तल्लीनता से ही समझा जा सकता है। उस सुख की तल्लीनता जो एक दूसरे के बिना नितान्त असंभव हैं। उसे संभव करेगी राजकुमारी कंचनमाला।

स्वागत सत्कार, पाणिग्रहण-उत्सव में महिष्मती में तीन दिन बीतगए हैं। परम

प्रसन्न है क्षत्रप अभिसेन एवं रानी मणिमाला। अश्रु पूरित नेत्रों से वे विदा दे रहे हैं कंचनमाला को , जो मगध साम्राज्य की युवराज्ञी बनी हैं। शिविका में बैठ गई है मन में महिष्मती का वियोग का आभास लिए युवराज्ञी कंचनमाला। शिविका के दंड के अग्रभाग को कुछ दूर कंधा देंगे स्वयं क्षत्रप एवं उनके अनुज। फिर रथ में वे आरूढ़ होगी युवराज के साथ।

उज्जयिनी की दिशा में मार्ग पर युवराज और युवराज्ञी का रथ चला आ रहा है। दूसरे रथ में आरूढ़ हैं महामात्य और राजपुरोहित। अश्वारोही सैनिको से घिरे उपहारों से लदे हुए शकट चले जा रहे हैं। अपने अपने रथों पर महापौर और महामात्य। उज्जयिनी में दिनभर और रात्रि का विश्राम फिर पाटलिपुत्र की यात्रा आरंभ होगी। प्रसन्न हैं युवराज्ञी कंजनमाला। साथ ही आतुर है पाटलिपुत्र पहुंचकर गुरुजनों का आशीर्वाद पाने के लिए।

"कितने दिन की यात्रा होगी आर्यपुत्र ?"

पूछ रही है युवराज्ञी ?

"यही तीन दिवस और रात्रियां।"

मार्ग में मिलेगे मथुरा और वाराणसी। कदाचित वे ही विराम स्थल रहेगे।"

"अर्थात् मालव से इतनी दूर है मगध ?" अपनी उत्सुकता छिपा नहीं पा रही है युवराज्ञी कंचनमाला।"

"हॉ प्रिय। अब थोड़ा विश्राम कर लें। प्रातः प्रत्यूष के पूर्व यात्रा के लिए निकलना हैं।

न जाने कब आंख लग गई युवराज्ञी की। स्वप्न में भी वे देखती रहीं यात्राएं, सरिताओं में नौकायन, फिर दुर्गम प्रदेशों को लांघता उनका रथ। कल्पना में चेतस का विस्तार होता रहा। स्वटन में सब कुछ यथार्थ सा लगता रहा।.....

नव वर-वधू के आगमन का समाचार पाटलिपुत्र पहुंच चुका है। सम्पूर्ण नगर एवं राजप्रासाद तोरण द्वारों आम्रपत्रों की वंदन वारों से सुसज्जित है। राजप्रसाद के सिंह द्वार पर मंगल चौक पूरे गए हैं। पूर्ण कुभं एवं आरती सज चुकी है . स्वयं परम भट्टारक अग्रमहिषी असंघिमित्रा सहित स्वयं स्वागत के लिए द्वार पर उपस्थित होगे। आरती उतारेगी स्वयं अग्रमहिषी असंघिमित्रा। राजमहिषी रोग शैया पर पड़ी हैं। काफी अशक्त हैं।

युवराज कुणाल एवं युवराज्ञी का रथ निकट आ पहुंचा। चारण ने तूर्य बजाकर

उनके आगमन की सूचना दी - अग्रमहिषी ने स्वयं आरती उतारी एवं युवराज्ञी को स्नेह पूर्वक हृदय से लगाया। दोनो परम भट्टारक और अग्रमहिषी के चरणों में झुके। आशीष देकर अग्रमहिषी ने कहा-"तुम्हारी माता कक्ष में प्रतीक्षा कर रही हैं। सर्वप्रथम वधूलक्ष्मी सहित उन्हें प्रणाम करने चलो वत्स।"

दोनों ही अग्रमहिषी एवं परम भट्टारक सहित कक्ष में पहुंचे। युवराज ने शैया पर लेटी माता के मुख को देखा। सन्मुख युवराज को देख पाकर नवीन चेतना एवं स्फूर्ति सी सहसा राजमहिषी पद्मावती में जागी। वे हठात् उठ बैठी। दोनों दुर्बल बाहें फैलाकर युवराज्ञी कंचनमाला को गूढ़ आलिंगन में लेना चाहा-"आओ वत्स।" कहकर युवराज कुणाल के शीश को अंक में ले लिया। तभी वह आलिंगन शिथिल हो चला। वे चेतनाशून्य हुई। आंखे तनिक खुली - फिर निस्पंद हो गई। ....

परम भट्टारक प्रथम तो स्तंभित खड़े रहे। फिर वस्तु स्थिति का भान हुआ। जिन राजमहिषी ने मगध के साम्राज्य को उसका युवराज दिया, उनकी निर्जीव देह सम्मुख पड़ी थी। आजीवन जिन्होने परम भट्टारक के सुख को अपना सुख माना, दुःख को अपना दुःख समझा, एश्वर्य और सत्ता की कभी कामना नहीं की और अग्रमहिषी को अपना पूज्य माना, कभी किसी की प्रतियोगी नहीं रही। राजकुल का हित ही जिनका मनोकाम रहा वे अब चिर निद्रा में लीन हैं। कुछ पलों में ही रुदन का समवेत स्वर कक्ष में उठा। परम भट्टारक ने युवराज को सांत्वना दी और उतरीय से अपने अश्रु पोंछते हुए कक्ष के बाहर निकल आए। वधु-लक्ष्मी सहित युवराज करुण स्वर में मूक रुदन कर उठे। असंधिमित्रा ने नववधू को किसी ममत्व से अपने आलिंगन में बांध लिया।

पाटलिपुत्र में राजमहिषी के निधन का तीन दिन शोक मनाया जाएगा। इस बीच सभी राजकीय आयोजन और नाट्य शालाएं अपनी गतिविधियां स्थगित रखेंगी।

किन्तु सारा अवसाद और शैथिल्प शीध्र ही जाता रहा है। पाटलिपुत्र का राजप्रासाद पुनः गतिशील और जीवन्त हो उठा है। युवराज कुणाल राजकाज में रुचि ले रहे हैं। परम भट्टारक को पाटलिपुत्र के बाहर देशाटन करने का प्रचुर अवकाश दे रहे है। युवराज्ञी कंचनमाला ने अपना दायित्व सम्हाल लिया है। उन्हें पाकर निश्चिंत हो गई असंधिमित्रा।.............

बारह

पुनः उज्जयिनी ।

आश्विन शुक्ल पूर्णिमा की रात्रि । शरदोत्सव की रात्रि ।

परम भट्टारक सम्राट अशोक पाटलिपुत्र से उज्जयिनी पधारे हैं । उत्सव के वे ही प्रमुख अतिथि है । नगर श्रेष्ठी रत्नसेन के सुरम्य भवन में उनके पधारने की प्रतीक्षा है । विशाल उद्यान में श्वेत-रक्त पक्षों से सुसज्जित मंच और उसके सम्मुख पौर सभा के सभासद प्रमुख नागरिकों और अतिथियों के बैठने की व्यवस्था है । उत्सव का संचालन करेगी श्रेष्ठी-कन्या कुमारी तिष्यरक्षिता ।

श्रेष्ठी कन्या तिष्यरक्षिता ने विशेष यत्न से स्वयं को सजाया है । परम भट्टारक की अग्रपूजा और स्वागत वही करेगी । श्रेष्ठी ने सचेत किया -"परम भट्टारक के स्वागत में कोई त्रुटि न होने पाए पुत्री । हम सब का हित उनके प्रसन्न होने में ही है। नगर का हित, मेरा हित और तुम्हारा-हित । कदाचति मेरा अभिप्राय तुम समझ गई हो वत्स?"

"आपका अभिप्राय मैं समझ गई हूँ तात । अपने हित की बात आपने ठीक ही कही किन्तु भला मेरा कौनसा हित है ?" अत्यन्त सरल बनते हुए श्रेष्ठी कन्या ने पूछ ही लिया ।"

"मैं अब वृद्ध हो चला । अपनी विपुल धनसंपदा तुम्हारे सहोदर को सौंप चुका। अब चिन्ता है, तुम्हें किसे सौंपू ? तुम जो सुख सुविधाओं में पली हो, जिसने अपने जीवन में उस सारे वैभव को जिया है, जो साधारणतया प्राप्त नहीं है । किसी सुयोग्य व्यक्ति को तुम्हे सौंप सकूं जहां वह सब तुम्हें मिले जो मैने तुम्हें अपनी पुत्री के रूप में दिया है । कदाचित उससे भी कही अधिक हमें कई अवसर मिले, तुमने वे खो दिए।"

तिष्यरक्षिता ने अपना शीश उठाकर पिता की ओर देखा, फिर उसकी दृष्टि विशाल दर्पण की ओर गई जिसमे उसकी छवि प्रतिबिंबित हो रही थी । एक पल को अपने सौंदर्य को उसने निहारा और स्वयं अपने रूप पर मुग्ध होते हुए बोली -"मैं साधारण नारी तो नही हूँ पिताश्री कि प्रत्येक अवसर को बांधने का प्रयत्न करती । असाधारण के लिए कोई असाधारण अवसर ही चाहिए । मैं उसी अवसर की प्रतीक्षा में हूँ तात्।"

"किन्तु मेरी चिन्ता ?"

''उस चिंता का कोई कारण नहीं है । मैं समर्थ हूँ । आपका धन अब मेरा नहीं रहेगा । जितना भोगना था , भोग चुकी । आप निश्चिंत रहें । मुझे तनिक स्वतंत्र होने दें । स्वतंत्र किन्तु स्वच्छन्द नहीं । मैं दोनो का अन्तर जानती हूँ ।''

''इसका भान है मुझे । तथापि सावधान करना चाहता था कहीं अनाधिकार चेष्टा न कर बैठना ।''

''कैसा अनाधिकार और उसकी चेष्टा ? फिर मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगी जो मेरे और आपके हित के विपरीत हो । मैं अपना गंतव्य पाकर ही रहूँगी ।''

तभी सेवक आ पहुंचा । ''परम भट्टारक के पधारने का समय हो चुका स्वामी। सभी भवन के द्वार पर पहुंच चुके हैं । आपकी प्रतीक्षा है ।''

''चलो बाहर चलें-कहकर श्रेष्ठी रत्नसेन कक्ष के बाहर आ गए । उनके पीछे श्रेष्ठी कन्या तिष्यरक्षिता । तभी चारण ने तूर्य बजाकर परम भट्टारक के उत्सव-स्थल पर पधारने की सूचना दी । रथ रुका । परम भट्टारक रथ से उतरे । जय घोष से संपूर्ण वीथी गूंज उठी । ऊपर अट्टालिकाओ से कुल वधुओं ने पुष्प वर्षा की । नागरिको ने परम भट्टयरक को प्रणाम की मुद्रा में नमन किया । परम भट्ारक को अनेक चेहरे अत्यन्त परिचित लगे । प्रति नमन की मुद्रा में किंचित सस्मित वे उन्हे पहचानने की चेष्टा करते और मन्द गति से आगे बढ़ जाते । क्षण भर में पूर्ण कुभं उठाए दो सुन्दर स्त्रियां आगे आई । तिष्यरक्षिता ने आगे बढ़कर प्रक्ष्य अर्ध्यं दिया फिर परम भट्टारक के मस्तक पर अरुण तिलक अंकित कर आरती उतारी । अपने चपल श्वेत-श्याम नेत्रों से वह पल भर को परम भट्टारक की ओर निहारती रही । और किसी संभ्रम से किंचित सस्मित होकर मधुर वाणी में निवेदन किया ''परम भट्टारक का स्वागत है । भीतर पधारें ।'' जैसे वह मधुर वाणी परम भट्टारक को भीतर तक स्पर्श कर गई । उन्हें लगा इस अनुरोध में आग्रह और विनय के अतिरिक्त एक दर्प भी है । दर्प अपने होने का। अपने अस्तित्व का ।

पुनः तिष्यरक्षिता ने अपने नेत्र उठाऐ । परम भट्टारक उसी की ओर देख रहे थे। किन्तु तिष्यरक्षिता के नेत्र इस बार झुके नहीं । वे परम भट्टारक की ओर एक टक देखते रहे । किसी ढीठ शिशु की तरह जो प्रताड़णा का अर्थ नही जानता है ।

''भीतर पधारिए महाराज । महोत्सव के आरंभ की आज्ञा दें । आपकी प्रतीक्षा में नगर का रसिक समाज बैठा हैं । हमें कृत कृत्य कीजिए । श्रेष्ठी रत्नसेन ने करबद्ध होकर निवेदन किया । परम भट्टारक ने पुनः तिष्यरक्षिता की और पल भर को देखा।

श्रेष्ठी कन्या ने सस्मित नमन की मुद्रा में तनिक शीश झुकाया ।

''मेरी आत्मजा तिष्यरक्षिता है महाराज। इस शरदोत्सव की संचालिका यही है। स्वयं भी नृत्य गायन में निपुण और कलाविद है ।'' अत्यन्त चतुर और विनीत होकर श्रेष्ठी ने अपनी कन्या का परिचय दे डाला ।

''साधु'' कहकर परम भट्टारक चलने को उद्यत हुए। अविलम्ब तिष्यरक्षिता ने कर्णिकार और मंदार पुष्पहार परम भट्टारक को पहनाया। फिर कमलनियों और शकुन पुष्पों के पाटिल पथ पर बिखेर दिए। महामात्र राजुक सदम महापौर, ने स्वागत में प्रणाम किया। तिष्यरक्षिता के पीछे-पीछे परम भट्टारक ने तोरण सजे द्वार मे प्रवेश किया - चारण ने पुनः उच्च स्वर में पुकारा-सावधान। परम भट्टारक प्रजापालक, महाराजधिराज पधार रहें है। जय घोष के साथ संपूर्ण समाज अपने आसन से खड़ा हो गया । खड़ा रहा जबतक परम भट्टारक अपने आसन पर नहीं बैठे ।

शरद पूर्णिमा के शुभ - शीतल प्रकाश के नीचे मुक्ताकाशी प्रेक्षागार। मंच पर अभिनीत हो रहा है ''पुरूरवा-उर्वशी'' नृत्य नाटिका का प्रथम प्रणय प्रसंग। उर्वशी का अभिनय कर रही है श्रेष्ठी-कन्या तिष्यरक्षिता । चीनांशुक का रक्त कूपसिक, पीतवर्णीय, श्लाथवांधिनी, गले में मोती जड़ित रत्नहार, हिम मेखला, पैरों में नूपुर, वेणी सर्प केश, और पुष्प - मल्लिका आवेष्टित कलाईयां। स्वर्ग से अवतरित उर्वशी-सी नृत्य करती तिष्यरक्षिता। पुरूरवा बनी है उसकी सखी अंजना। श्वेत रेशमी उतरीय, अधोवस्त्र, गले में मुक्ता हार । शीश पर स्वर्णमुकुट । संगीत नृत्य और आलाप वे आरोही-अवरोही स्वर चारों और गूंज रहे हैं। प्रणयोपरान्त गंधर्व विवाह पुरूरवा का वचन भंग और उर्वशी का पुरूखा का परित्याग कर स्वर्गारोहण आदि दृश्यों का मूकाभिनय और संगीतमय प्रस्तुति । मध्य रात्रि आ पहुँची किन्तु रसिक समाज अविचलित बैठा रहा। अपने आसन पर बैठे रहे स्वयं परम भट्टारक ।

उत्सव के समाप्ति की घोषणा होने को है। विसर्जित होने के पूर्व परम भट्टारक कलाविदों को पुष्प मालाऐ स्वयं पहनाकर सम्मानित कर रहे है । तिष्यरक्षिता और अंजना के अभिनय की प्रशंसा कर रहे हैं परम भट्टारक ।

अब रथारूढ़ होने को है महाराज श्रेष्ठी रत्नसेन आगे बढ आए हैं -''परम भट्टारक ने इस कुटिया में पधार कर उसे पावन किया है। अब विश्राम करें महाराज।''

''हमे यहां आकर प्रसन्नता हुई। तुमने सत्य ही कहा था देवी तिष्यरक्षिता, सत्य ही कुशल कलावंत हैं, नृत्य संगीत विशारदा । साधुवाद ।'' उत्तर में परम भट्टारक

ने निवेदन किया।

तभी पिता का संकेत पाकर तिष्यरक्षिता परमभट्टारक के सम्मुख आई। अत्यंत निकट आकर महाराज को प्रणाम किया। परम भट्टारक ने निकट से श्रेष्ठी कन्या का प्रसाधन लावन्य देखा। वेणी की पुष्पगंध उनकी नासिका–पुटों तक पहुंचती प्रतीत हुई। मस्तक पर चंद्रिका तिलक, विशाल नेत्रों में क्षीण कज्जल की रेख, होठों पर रक्त राग। शंख के समान सुन्दर लालिमा मय ग्रीवा। रक्त कौशेय में खिंचकर बंधे उरोज मुखर होते हुए। वक्ष पर आदोंलित होता पुष्पचर। हल्की सी प्रकंपित देह–यष्टि। इस बार दृष्टि निरन्तर झुकी हुई। सत्य ही उर्वशी सा रूप।.... परम भट्टारक किंचित रुके रहे।

"पुत्री को आशीर्वाद दे भगवान।" श्रेष्ठी रत्नसेन ने करबद्ध होकर पुनः विनय की।

परम भट्टारक ने कहा–"तुम्हारी कला अदभुत है, अदभुत ही नहीं अमूल्य भी। तथापि, हमारी भेंट है यह" कहकर अपना रत्न मुक्ताहार परम भट्टारक ने उतार कर श्रेष्ठी कन्या को पहना दिया। उपस्थित समाज ने जयघोष किया।

"रथ प्रस्तुत है महाराज।" महापौर ने स्मरण कराया। परम भट्टारक रथ में आ बिराजे।

परम भट्टारक को विदाकर श्रेष्ठी रत्नसेन भवन में लौट आए। तिष्यरक्षिता के निकट पहुँचकर उसके शीश पर हाथ रख वे बोले– "तुम्हारा प्रदर्शन अदभुत था पुत्री। परम भट्टारक सचमुच बहुत प्रसन्न हुए हैं। उनके हाथों भेंट पाना तुम्हारी असाधारण प्रस्तुति का ही द्योतक है।" कल प्रातः राजभवन में भेंट करने का अनुरोध स्वयं महाराज ने किया है।"

"इसका अर्थ ?" पूछा तिष्यरक्षिता ने।

"मैं नही जानता। कदाचित् समय की न्यूनता और अधिक विलम्ब के कारण महाराज कुछ कह नहीं पाये हों।

"क्या कहना चाहते थे महाराज ?"

"कैसे कहूँ। किन्तु अपने हाथों तुम्हे सम्मानित करने का अर्थ ....।" श्रेष्ठी अधिक कह न पाए। जैसे पुत्री के प्रति उनका अनुराग उमड़ आया था। वे केशो पर उसी प्रकार हाथ फेरते हुए बोले।"जाओ अब विश्राम करो पुत्री।"

पिता को प्रणाम कर तिष्यरक्षिता अपने कक्ष में चली गई। वेणी खोलकर वस्त्र

बदले, हाथ मुँह प्रक्षालन कर पर्यंक पर लेट गई। गलें में परम भट्टारक का पहनाया रत्न मुक्ताहार का स्पर्श कर न जाने किस भावना से तिष्यरक्षिता ने अपने ओठों का उसे स्पर्श दिया।

परम भट्टारक ने कहा था-''तुम्हारी कला अदभुत है, अदभुत ही नहीं अमूल्य भी।''

मन ही मन देवी महासरस्वती को प्रणाम कर रही है तिष्यरक्षिता मूक प्रार्थना करती हुई।''यह आपका ही अनुग्रह है माता। ऐसा ही अनुग्रह बना रहे माँ भगवती।''

रात्रि का शेष प्रहर आंखों में ही व्यतीत हुआ। सूर्योदय के पूर्व ही शैया त्यागकर उठ बैठी तिष्यरक्षिता। संपूर्ण रात्रि के जागरण से शरीर क्लांत था। वैसी ही स्नानागार में वह जा घुसी। आधी घड़ी बीतते उष्ण जल से स्नानकर वस्त्र बदले। पुष्पांजलि सजा देवी-मन्दिर पहुंची। उस दिन अर्चना आराधना में मन जैसे लग ही नही रहा था। जैसे भावी परिवर्तन का दिशा संकेत लिए वह दिवस उदय हुआ था।

''मेरा कल्याण करना हे जगत जननी। परम श्रद्धा से मस्तक झुका नत रही तिष्यरक्षिता। देवी-मन्दिर से जब वह भवन लौटी-श्रेष्ठी शिविका में बैठकर राजभवन को प्रस्थान कर चुके थे। भावी की चिन्ता में अपने कक्ष में बैठी रही तिष्यरक्षिता। न जाने बैठे-बैठे कितना समय व्यतीत हो गया।

राजभवन में पहुंचते ही परम भट्टारक ने अपने कक्ष में श्रेष्ठी रत्नसेन को बुला भेजा-उनके स्वागत में महाराज तनिक आसन से उठे। प्रणाम कर महाराज का संकेत पाकर श्रेष्ठी रत्नसेन उनके सम्मुख ही आसन पर बैठ गए।

''गत रात्रि शरदोत्सव से हमारा मन बहुत प्रसन्न हुआ है। हम चिरकाल से जानते है उज्जयिनी कलाविदो और गुणी जनो की नगरी है।'' परम भट्टारक ने कहा।

''यह आपका अनुग्रह है भगवान। परम भट्टारक स्वयं कलापारखी हैं।''

''जिस प्रकार कलाकारो ने इसे अपनी कला से समृद्ध किया है उसी प्रकार व्यापार द्वारा आप श्रेष्ठियों ने इस नगरी को आर्थिक प्रगति के शिखर पर पहुँचाया है। हमारा साधुवाद।''

''यह भी महाराज की अनुकम्पा का प्रतिफल है। मगध साम्राज्य के सिंहासन पर आप जैसा धर्मपालक, न्यायविद तथा देवानाम प्रिय सम्राट विद्यमान हो तो प्रजा को किसी का भय नही। न किसी की चिन्ता। यदि राष्ट्र में शान्ति रहे, शत्रुओं के आक्रमण का भय न हो, राष्ट्र चतुर्दिक प्रगति करता है।

" हमे रहरह कर देवी तिष्यरक्षिता का स्मरण आता रहा है । उनका स्थान तो किसी राजप्रासाद में होना चाहिए । किसी राजवंश की शोभा की अभिवृद्धि की वे अधिकारिणी है श्रेष्ठी ।"

परम भट्टारक ने एक जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से रत्नसेन की ओर ताका । श्रेष्ठी कुछ संकुचित हुए । फिर करबद्ध होकर निवेदन किया- " आपके विचार स्वागत योग्य हैं स्वामी । किन्तु मात्र विचारों से यथार्थ की उपलब्धि संभव नही होती । अपनी पुत्री के प्रति आपकी भावना के लिए मैं कृतज्ञ हूँ महाराज ।"

"यथार्थ की उपलब्धि संभव है श्रेष्ठी । हम देवी तिष्यरक्षिता का पाणिग्राहण करने को उद्यत हैं । तुम्हें आपत्ति तो नहीं ?"

परम भट्टारक की बात सुनकर कुछ पल के लिए श्रेष्ठी रत्नसेन स्तंभित रह गए । फिर महाराज के कथन का अर्थ समझ में आया-"यह तो मेरी पुत्री का परम सौभाग्य होगा महाराज । किन्तु .....?"

"आश्वस्त रहो श्रेष्ठी । हम अपने प्रस्ताव की स्वीकृति पाते ही शुभ मुर्हूत में स्वयं आप की देहरी पर उपस्थित होंगे । आपकी पुत्री से विधिवत विवाह सम्पन्न कर ही पाटलिपुत्र लौटेगे ।

रत्नसेन ने उठकर परम भट्टारक के सम्मुख सादर शीश झुकाया ।"मुझे आपका प्रस्ताव सहर्ष मान्य है । और पुत्री तिष्यरक्षिता भी इस निर्णय से अति प्रसन्न होगी, मुझे प्रतीती है धर्मावतार ।

"ठीक है । आप विवाह का प्रबन्ध करें और हमारी सूचना की प्रतीक्षा भी ।" परम भट्टारक की अनुमति पाकर श्रेष्ठी रत्नसेन ने विदा ली ।

परम भट्टारक का आदेश आते ही महामात्र वल्लभ ने तत्काल राज पुरोहित की व्यवस्था कर दी । तदनुसार शुभ मुर्हूत में स्वयं श्रेष्ठी अपनी पुत्री तिष्यरक्षिता का परम भट्टारक से विवाह कर न केवल उस चिन्ता से मुक्त हुआ, अवन्ती रक्षा का महाश्रेणी बन गया । प्रसन्न मना तिष्यरक्षिता ने जैसे अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लिया, यही तो उसका गंतव्य था ।

प्रातः सूर्योदय से पूर्व ही परम भट्टारक का अश्वारोही सैनिकों से घिरा हुआ रथ पाटलिपुत्र की ओर कूंच करने को उद्यत था । इस बार वे अकेले नहीं थें । रथ में उनके साथ आरूढ़ थी राजमहिषी तिष्यरक्षिता ।

तेरह

काकनद में चैत्यगिरि पर मुख्य स्तूप निर्मित हो चुका है। परम भट्टारक देवानाम् प्रिय ने स्वयं जाकर स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स को प्रथम प्रार्थना हेतु–आमन्त्रित किया है। तथागत के पुण्य अवशेष प्रस्तर–मंजूषा में समारोह पूर्वक स्थापित होंगे। परम भट्टारक राज–शिल्पी सारंग एवं उनके सहयोगी शिल्पियों को सम्मानित करेंगे। इसी अवसर पर श्रमणी शाक्यानी चैत्य में निवास करने पधारेंगी, और महेन्द्र एवं संघमित्रा को बोधिवृक्ष की शाखा लेकर श्री लंका को धर्म प्रचारार्थ विदा करेंगे स्थविर। सारे समारोह की व्यवस्था युवराज कुणाल एवं युवराज्ञी कंचनमाला कर रही हैं। सम्पूर्ण सभास्थल तोरण द्वार, आम्रपल्लव की वंदनवारों, पताकाओं एवं स्वागत द्वारों से सुसज्जित कर दिए गये हैं। स्थान स्थान पर यवा–जड़ित नारियल से मढ़े पूर्ण–कुंभ स्थापित हैं। पावन अवशेषों की स्थापना एवं पूजा–अर्चना के पश्चात सजे मंडप में पूजा–नृत्य प्रस्तुत करेगी मंजरी।........

महामात्य–राधागुप्त अब वृद्ध हो चुके हैं। उनके केश ही नही, शरीर के लोम भी श्वेत हो चुके हैं। उन्होंने अपने पद से अवकाश ग्रहण कर जिन–शासन में दीक्षा ले ली है। परम भट्टारक ने राजमहिषी तिष्यरक्षिता के परामर्श से अब अग्र आमात्य के पद पर आमात्य रूद्रमित्र की नियुक्ति की है। अग्रमहिषी राजकाज से अन्य मनस्क हो चली हैं। अधिकांश समय वे देवार्चन में बिता रही हैं। तिष्यरक्षिता प्रति द्वंद्विता में नहीं हैं तो भी उस रिक्तता को भरने का प्रयास कर रही हैं तिष्यरक्षिता। राजप्रसाद में भी वस्तुत: वेही अग्रमहिषी हैं। सूर्योदय से सूर्यास्त तक वे ही गतिशील रहती हैं प्रासाद में।

उनकी सहमति और परामर्श के बिना परम भट्टारक कोई निर्णय लेते ही नहीं है। वैसे भी उनका अधिक समय बौद्ध संघो की स्थापना एवं धम्म के प्रचार में बीत रहा हैं।

परम भट्टारक के साथ काकनद नहीं जाएगी राजमहिषी तिष्यरक्षिता। वे पाटलिपुत्र में ही रहेगी। अग्रआमात्य रूद्रमित्र के साथ। अग्रमहिषी असंधिमित्रा समारोह में उपस्थित रहेंगी।

चैत्यगिरी के उत्सव का आंरभ भगवान तथागत के पवित्र अवशेषों की शोभायात्रा

से हो रहा है। खुली शिविका में पारिजात एवं अपराजिता के
हैं । धवल छत्र और चंवर लेकर साथ-साथ राज सेवक
राजचिन्ह और ध्वज है। परम भट्टारक, स्थविर मौग्गलिपुत्र
के साथ एक सहस्त्र बौद्धभिक्षु हैं । उत्सव स्थल के प्रवेश
के साथ युवराज कुणाल एवं युवराज्ञी कंचनमाला उपस्थि
उज्जयिनी, विदिशा एवं महिष्मती से विशाल जन-समूह
चला आ रहा है ।

शोभायात्रा निकट आ पहुँची है। जन समूह ने जय घोष आंरभ किया है। चारण ने परम भट्टारक का आगमन सूचक तूर्य बजा दिया हैं । बुद्धं शरणं गच्छामि । संघ शरणं गच्छामी : धम्मं शरणं गच्छामि का मंत्रोच्चार होने लगा हैं ।

परम तुष्ट है अग्र शिल्पी सारंग पट्टनायक। लगभग तीन वर्षों की उनकी और उनके सहशिल्पियों की साधना पूर्ण हुई। तक्षण की एकाग्रता से किन्तु उनकी आंखे थकी थकी हैं । सभामंडप की पृष्ठभूमि में पाषाण-वेष्टिनियो से परिवेष्ठित विशाल स्तूप स्पष्ट दिखाई दे रहा है। किन्तु तोरण द्वारों पर गाथाएं अंकित करने का कार्य अब भी चल रहा है। पार्श्वभाग में चैत्यग्रह एवं संघाराम के कक्षों का निर्माण पूरा हो चुका है। विशाल प्रार्थना ग्रह के स्तंभों और आवास मंडपों की भित्तियों पर अर्चना मुद्राएं अंकित की जा रही हैं । इस सबको देखकर गर्व से फूले नहीं समा रहे हैं अग्रशिल्पी सारंग। उनकी साधना का फल आंखों के सामने है ।

मंगल कलश उठाऐ सौभाग्यवती स्त्रियाँ सम्मुख आई। कुमारिकाओं ने पुष्प वर्षा की। शिविका से पवित्र अवशेष उठाकर स्थविर उपगुप्त ने शीश पर धर लिए। युवराज और युवराज्ञी ने उनका गंध, पुष्प एवं अगरू से पूजन किया। मोग्गलिपुत्र तिस्स स्थविर उपगुप्त के पीछे चल रहे हैं । परम भट्टारक सहित सभी जन मुख्य स्तूप के तोरण द्वार को पारकर परिक्रमा सोपान पर चढ़ते हुए शिखर पर जा पहुंचे हैं । अवशेषों की प्रथम पूजा सम्पन्न कर स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स ने प्रस्तर मंजूषा में उन्हें श्रद्धासहित स्थापित कर दिया है। बार बार वे, परम भट्टारक और अन्य जन नमन कर रहे हैं । परम भट्टारक का विदिशा में श्रमणी शाक्यानी के प्रज्वयाग्रहण के अवसर पर लिया गया व्रत आज पूरा हुआ। मन ही मन प्रमुदित है श्रमणी शाक्यानी। वे प्रणाम की मुद्रा में दृष्टि नीचे किए एक ओर खड़ी हैं । अनासक्त मन की उदारता से वे परम भट्टारक को मौन ही साधुवाद दे रही हैं । उनके साथ ही प्रार्थना में संलग्न हैं महेन्द्र एवं संघमित्रा।

उत्सव मंडप में पहुंचने की घोषणा हो रही है । प्रवचन करेंगे स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स । वे ही महेन्द्र एवं संघमित्रा को बोधिवृक्ष की शाखा देकर धर्म प्रचार हेतु प्रवृत्त करेंगे । उन्हें तुरन्त काकनद त्यागना होगा । हो सकता है आज ही । स्थविर उपगुप्त ने श्रमणी शाक्यानी से यही कहा था । इतनी कम आयु में पुत्र महेन्द्र एवं किशोर होती संघमित्रा को त्यागना होगा । इस त्याग का मर्म कदाचित् शाक्यानी जानती हैं । वे जानती हैं, किस अपराध की अभियुक्त हैं शाक्यानी ? उसके दंड स्वरूप ही आज वे स्वयं पुत्र पुत्री को दंड और चीवर सौंपेगी । फिर भिक्षाटन करते हुए दीर्घ प्रवास को वे निकल पड़ेंगे । पीड़ित और दुःखी जनों को संबोधित करेंगे - बुद्धं शरण गच्छ । संघ शरणं गच्छ : धम्मं शरणं गच्छ । प्रवचन रूप में शाक्यानी की ही वह वाणी बोल रही होगी।

ऊँचे काष्ठ के तख्त पर श्वेत वस्त्र बिछा है । स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स एवं स्थविर उपगुप्त साथ साथ विराजे हैं । दायीं ओर श्रमण शाक्यानी काषाय में लिपटी बैठी है। निकट ही है संघ मित्रा एवं महेन्द्र । बाई ओर श्रमणी और भिक्षु-भिक्षुणियों का समूह पृथ्वी पर उपविष्ट हैं । मंच के सम्मुख परम भट्टारक, राजकुल और आमात्य हैं । उन्हीं के साथ अग्रशिल्पी सारंग, विशाला एवं मंजरी हैं ।

"पीड़ितों के प्रति महाकरुणा, सर्वभूत दया सच्चा मानव धर्म है । पर पीड़ा मेरी ही पीड़ा है । उसका परित्राण उसी प्रकार करूँ, जैसा मैं स्वयं के लिए चाहता हूँ, यही भावना आनन्द का अनुभव कराती है आनन्द दीर्घकालीन एवं सर्वव्यापी है । उसे समष्टि में बांटते चलें । इंद्रिय-सुख की इच्छा किसी दरिद्री की धन-प्राप्ति की कामना सदृश्य ही है, जो कभी पूरी नही होती एवं मनुष्य के दुःख का कारण बनी रहती है। अनासक्ति में ही चिरंतन सुख है । पर-सेवार्थ उसको प्राप्त करें । सार्वभौम की कल्याण कामना हमारी अपनी कल्याण कामना है ।"

प्रवचन समाप्त हुआ । सामूहिक मंत्रोच्चार के बीच स्थविर उपगुप्त ने संघमित्रा को आचार्य प्रवर के सम्मुख प्रस्तुत किया । उनके आदेश से दंड और चीवर श्रमणी शाक्यानी ने स्वयं उन्हें सौंपे । स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स ने बोद्धिवृक्ष की एक लघु शाखा महेन्द्र के हाथों में दी आचार्य ने दोहारने का आदेश दिया - "हम श्रावक-धर्म विनय, और शील के पालन की प्रतिज्ञा करते हैं । हम अपनी वाणी को कभी भ्रष्ट नहीं करेगें । दुःखीजन की सेवाही अब हमारा धर्म होगा । इस पवित्र बोधिवृक्ष की शाखा में परोपकार में प्रवृत्त करने की अपार शक्ति हैं । मानव-मानव के बीच सुख और शान्ति की यह संवाहिका है ।"

महेन्द्र एवं संघमित्रा ने वह सब दोहराया। श्रमणी शाक्यानी और परम भट्टारक भीगे नेत्रों में देखते रहे। युवराज और युवराज्ञी अभिभूत से बैठे रहे। जयघोष से सभामंडप गूंजने लगा। जन समूह ने पुकार कर कहा "देवी शाक्यानी सम्मुख आए।" स्थविर उपगुप्त ने उन्हें मंच पर प्रस्तुत किया–"पर्वत सी अटल, सागर सी करुण एवं पृथ्वी सी सहिष्णु यही है देवी शाक्यानी।"दया, श्रद्धा का भव्य रूप सामने आया। शाक्यानी पर पुष्प वर्षा होने लगी। उनके जयघोष से कंठ अवरूद्ध हो चले। परम भट्टारक अवाक् देखते रहे।

सहसा शाक्यानी मंच से उतरी। करबद्ध परम भट्टारक के सामने खड़ी हुई और बोली – "मैं आपकी धारणिक थी महाराज"। आज उस ऋण से मुक्त हुई। परम भट्टारक निरूतर रहे। श्रद्धा से करबद्ध वे आसन से उठ खड़े हुए। जन समुदाय पुनः जयघोष कर उठा। आमात्य ने निवेदन किया–"परम भट्टारक देवानां प्रिय अब अग्रशिल्पी सारंग, उनके सहयोगी शिल्पियों को अलंकरण प्रदान करेंगे।"

चारण ने तूर्यनाद किया। परम भट्टारक आसन से पुनः उठे। सर्वप्रथम उन्होंने चीनाशुंक उत्तरीय अग्रशिल्पी को ओढ़ाया। पुष्पमाला स्वयं पहनाई, एवं नारियल तथा थाल भरी स्वर्ण मुद्राएं उन्हें प्रदान की। अग्र शिल्पी सारंग ने अभिवादन कर भेंट स्वीकार की। पर्याप्त समय यही क्रम चलता रहा। तभी सामूहिक भोजन एवं सांयकालीन नृत्य संगीत अर्चना आरंभ हुई। जन–समूह विसर्जित हो भोजन – शालाओं की ओर पहुँचने लगा। द्रोण में दुग्ध खीर और फल सभी को आहार में मिले। भिक्षु भिक्षुणियों ने भी धारण किया। नवीन काषाय उन्हें सादर प्रदान किए गये। स्थविर मोग्गलिपुत्र तिस्स एवं आचार्य उपगुप्त ने भी राजकुल के साथ ही भोजन किया। उत्सव का प्रथम चरण समाप्त हुआ। वरद हस्त मुद्रा में आशीर्वाद देकर संधाराम में विश्राम हेतु चले गए हैं स्थविर द्वय और शाक्यानी।

वत्स महेन्द्र एवं संघमित्रा के लिए उपयुक्त यान, सेविकों और अंगरक्षकों की व्यवस्था कर रहे हैं परम भट्टारक। राजपुरोहित द्वारा निद्धोरित यात्रा मुर्हूत में वे स्वयं उन्हें विदा देगें। इस सब के प्रबन्ध में व्यस्त हैं द्विज आमात्य।

सायंकाल होते होते सभा–मंडप जन समुदाय से भर उठा है। महोत्सव के समापन के रुप में नृत्य–अर्चना अब प्रस्तुत करेगी मंजरी।

अतिथि शाला में पूछ बैठी थी मंजरी से युवराज्ञी कंचनमाला–"आर्यपुत्र से तुम्हारा परिचय कब का है मंजरी ?"

"परिचय अधिक पुराना नहीं है देवी। तथापि-इतना नया भी नहीं कि युवराज को ठीक से जान न सकूं।"

"उसका अर्थ ?"

"अर्थ यही कि अपने जीवन के प्रथम सोपान में मैने प्रथम पुरुष के रूप में युवराज को अत्यन्त निकट से देखा है। देखा ही नही, उन्हें सराहा भी है। किन्तु सराहना का वह भाव भोग का काम्य-भाव नहीं था। तथापि, वे प्रथम पुरूष हैं जिनके प्रति मैं अनुरक्त हुई थी।"

"और आर्यपुत्र के मन में ?"

"उनके मन की वे ही जानें। किन्तु प्रकट रूप से मेरी उन्होनें उपेक्षा भी नहीं की।

"फिर तुमने अवसर का लाभ क्यों नहीं उठाया ? क्यों नहीं तुमने अपनी कला और सौंदर्य से उन्हें जीता ?"

"अवसर मिला था। यदि कहूँ, युवराज ने स्वयं दिया था तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अपने और युवराज के संबंधों को मैं असीम ही रहने देना चाहती थी। विवाह का अर्थ उन्हें सीमित कर देना था। शरीर को ही अपनी सिद्धि का साधन बनाना था।"

"शरीर को अपनी सिद्धि का साधन बनाना क्या निष्प्रयोजन है ? नारी की सार्थकता इसमें निहित नहीं है कि वह पुरुष की तृप्ति का साधन बने। विशेष रूप से तब जबकि वह उसका काम्य पुरूष हो।"

"उस अर्थ में युवराज मेरे काम्यपुरूष थे ही नहीं, और न अब हैं। मैं उनकी आराधना करती थी, मात्र पूजा। फिर कैसे उनके साथ मैं भोग की कल्पना करती ?"

"हॉ युवराज्ञी, वह प्रवृति का मार्ग होता, निवृति का नहीं जो मैं चाहती थी। अपनी स्वतंत्र सत्ता में सुखी हूँ। कदाचित् आपसे परिणयकर युवराज भी उस सुख का अनुभव करते हों।"

"आर्यपुत्र कह रहे थे, तुमने पुरस्कार में उनसे रत्नहार नहीं लिया। इसका कारण?"

"कदाचित वह रत्नहार देकर युवराज ने मेरी कला का मूल्य चुकाना चाहा था?"

"क्या यह युवराज का अपमान नही था ? यदि मैं उनके स्थान पर होती तो तुम्हें क्षमा नहीं करती।"

"मेरा अभिप्राय उनका अपमान करना नही था।

यदि होता तो युवराज मेरे प्रति आज भी इतने सहृदय न होते, और न आप ही मेरे और युवराज के दीर्घकालीन परिचय और निकटता का भ्रम पालतीं ।"

"वह निरा भ्रम नहीं है मंजरी । इन दिनों मैं जबसे काकनद आई हूँ, मैंने आर्यपुत्र को सदा तुम्हें ही खोजते पाया है, जैसे तुम उनकी आवश्यकता हो, मैं नहीं ।

"इसकी अपराधी मैं नही हूँ युवराज्ञी । मैं युवराज को भी अपराधी नहीं मानती। मैं केवल इतना समझ पाई हूँ, आपके मन में युवराज के प्रति संदेह का विष उपज रहा है । किन्तु यह विष दाम्पत्य में सर्वनाश का कारण बन कर ही रहता है । मैं सावधान करना चाहती हूँ, आपको । युवराज आपके हैं, सदा आपके ही रहेंगे, यह विश्वास मैं आपको दिलाना चाहती हूँ । किन्तु उसके लिए आपको देह के अणु अणु को निःशेष करते हुए अपने पार्थिव में ही नही, सम्पूर्ण आत्मा में युवराज को जीना होगा ।"

"कदाचित वह सामर्थ्य मुझमें न हो ?"

"वह सामर्थ्य यदि आपमें नही है फिर किसमें होगी ? यदि आप असमर्थ अनुभव करती हैं तो इसका कारण आपका अविश्वास है युवराज में । इससे अधिक मैं क्या कहूँ ?"

"अब कुछ कहने को शेष है भी नहीं ।" तभी दासी ने आकर कहा–"युवराज आपकी प्रतीक्षा में हैं स्वामिनी !"

"मेरी प्रतीक्षा में ?" पूछा कंचनमाला ने ।

"हाँ स्वामिनी ।"

"तुम भी चलो मंजरी ।" कंचनमाला ने स्नेह से मंजरी का हाथ अपने हाथ में ले लिया ।

"प्रतीक्षा आपकी है, मेरी नहीं ।" मंजरी ने सस्मित कहा ।

युवराज्ञी कंचनमाला निष्पलक कुछ क्षण मंजरी को देखती रहीं । फिर दासी के साथ अतिथि–शाला की ओर चल दी ।

पूरा सभा – मंडप दर्शकों से भरा है । ज्योति शलाकाओं और दीपाधारों के प्रकाश में मंच पर मंजरी पूजा–नृत्य प्रस्तुत करने आ पहुंची है । अत्यन्त कमनीय और दर्शनीय सौंदर्य, आकर्षक प्रसाधन और परिवेश । नृत्य कला का अद्‌भुत प्रदर्शन करती हुई मंजरी। जैसे देवार्चना की उन मुद्राओं में एक चिरंतन पिपासा और अतृप्ति व्याप्त हो रही हो । जैसे शनैः शनैः तीव्रता से वह अतृप्ति जड़ोन्मुखी न होकर चिन्मुखी होती जा रही है । अंगो का सौंदर्य उस चिन्मुखी पिपासा में एकीकृत होता चला जा रहा

है। किसी महाकरुणा का भाव मुख पर प्रदीप्त है । जैसे सम्पूर्ण सौंदर्य-बोध किसी आत्म बोध में परिलिप्त हो रहा है ।..... नृत्य करते करते भाव विभोर होती जा रही है मंजरी । मृदंग और मंजरी के स्वर अधिक तीव्र और सघन हो चले हैं । पार्श्व में श्लोक गायन में आर्त-स्वर सुनाई दे रहा है । सहसा नृत्य करते करते मूर्छित सी पृथ्वी पर गिर पड़ी हैं मंजरी ।"साधु-साधु" जन समूह पुकार उठा है - भीषण करतल ध्वनि के बीच जयघोष हो रहा है .... एक विलक्षण अनुभव है दर्शकों के लिए ।........

चौदह

पाटलिपुत्र के राज प्रासाद की उच्चतम अट्टालिका में वातायन के सम्मुख खड़ी हैं तिष्यरक्षिता । सामने सुदूर पर्वतशिखरों पर सांझ उतरने को है । दीर्घ वकुल पंक्ति चहचहा कर गंगातट की ओर उड़ी चली जा रही है । अस्ताचल गामी सूर्य की अरुणिमा के पार्श्व में चित्र लिखित सा नयनाभिराय यह दृश्य लग रहा है । मुक्ताकाश में विचरण करते यह विहंग और मुक्त ही प्रतिपल संचरित होती गंगा की उर्मियां । किन्तु कदाचित् जीवन में ऐसी मुक्तता मिल पाती ?

"इस राजप्रसाद में सब कुछ कितना जीर्ण हो चुका है । वे ही दास-दासियों, कंचुकी, द्वारपाल, और उनकी घोषणाऐं, चारणों का तूर्यनाद, जयघोष, तोरण-द्वारों से लटकते शुक -पिको के स्वर्ण-पिंजर । सभी कुछ कितना पिष्ट-पेषित और प्रतिबंधित।

"स्वयं परम भट्टारक, वृद्ध होते हुए । राग-अनुराग से अधिक विराग की ओर अग्रसर, जिन्हें, धर्म राजिकाओं, संघारामों, चैत्यग्रहों के निर्माण और धर्मवर्धन की ही चिन्ता शेष है । मृगया, मांसभक्षण, आसव-सेवन सभी का त्याग । जिनकी वन्दिनी मैं ? पहले आयु का बड़ा भाग युद्धों में बीता, और अब श्लथ-शरीरी परम भट्टारक। चिरंतन प्रकृति का वह रस, और उसका पान जैसे मैं कर ही न पाई । उसका अभिशय रूप और भोग की लालसा उन्माद को जगाती है । शरीर का अणु अणु किसी क्षुधा

के शमनार्थ आकुल होता हुआ। और वे वृद्ध होते हुए हीन मानते हैं इसे। वे जानते नहीं अग्नि अपना धर्म छोड़ती नही। इंद्रियदमन मनुष्य की शाश्वत प्रकृतिमय आकांक्षाओं का हनन। चिरंकुश शासन का ~ अधिकार अपने हाथों में समेटती सी मैं, किन्तु कितनी पराधीन, असहाय और असमर्थ ?''

''और तुम युवराज कुणाल। जब तब तुम्हें ही मेरी आंखे खोजती रहती है। जिस दिन मैं तुम्हें नंही देख पाती हूँ, मन उद्विग्न हो उठता है तुम्हारी छवि को देख पाने के लिए। सत्य ही कितना विवश हो चली हूँ मैं ? कितना एकाकीपन लगता है तुम्हारे बिना ? मन विक्षिप्त सा होने लगता है। जिस मार्ग से तुम निकलते हो वातायन से तुम्हें एक टक देखती रहती हूँ, किन्तु तुम्हारे विशाल मनोहारी नेत्र कभी ऊपर की ओर उठते ही नही। तुम्हारे नेत्र देखते ही आखों को एक स्वर्गिक आनन्द मिलता है ? कितने प्रियम्वद लगते हैं वे युगल नेत्र, जिनके सौंदर्य को अपनी दृष्टि की राह मैं पी जाना चाहती हूँ। तुम्हें आलिंगन में ले लेने को कितना मन होता है ? अर्द्धरात्रि में कभी नींद से जागती हूँ तब शेष रात्रि जागरण में ही बीतती है। सम्पूर्ण सृष्टि में युवा नारी मन अपनी पूर्ण आकांक्षा की पूर्ति करता आया है। शरीर सुख भोगता है। नारी ऋतंभरा होती है। फिर मैं ही क्यों वंचित रहूँ ? मैंने ही ऐसा कौन सा अपराध किया है ? किस कर्म का यह फल पा रही हूँ ?

राजप्रासाद के गलियारों, कक्षों में दीपाघरों पर दीप जल चुके हैं। राजमहिषी तिष्यरक्षिता अत्यंत अस्थिर हैं। परम भट्टारक आचार्य उपगुप्त के साथ सारनाथ की यात्रा से लौटे नही है। प्रशासन का संपूर्ण भार युवराज कुणाल पर ही है। मंत्री परिषद की सभाएं परामर्श–दात्री समितियाँ आदि में उपस्थित उन्हें व्यस्त रखती है। वधुलक्ष्मी कंचलमाला महिषमती प्रवास के लिए अपने पुत्र संप्रति के साथ जा चुकी हैं। राज प्रासाद में अकेले राजपुरूष हैं कुणाल। यही तो अवसर है कुणाल से मिलने का। एकांत सुख पाने का उसके अंक में। समर्थ ही उस सुख को प्राप्त कर सकता है। सबल के लिए कुछ भी असंभव नही है। राजमहिषी तिष्यरक्षिता अपने अभीष्ट को पाकर रहेगी। आज ही तो कार्तिक शुक्ल पूर्णीमा है, प्रेमी–युगल के अवसर की शुभ रात्रि। तिष्यरक्षिता बनेगी अभिसारिका। प्रेम पुरूष होगा कुणाल।........

रात्रि होते ही युवराज कुणाल राजमहिषी तिष्यरक्षिता के कक्ष में उपस्थित हों, यह राजाज्ञा है। प्रयोजन है अति आवश्यक परामर्श। विलम्ब अक्षम्य होगा। आऐंगे युवराज कुणाल, तिष्यरक्षिता जानती हैं।

दीप प्रज्वलित होते ही तिष्यरक्षिता ने स्नान किया है । कल्पिका ने विशेष प्रसाधन किया है राजमहिषी का । मस्तक पर सौंगधिक अनुलेपन, अंगराम, मध्य में चेंद्रिका-तिलक । रक्ताभ चीनांशुक का कूर्पासक और वैसा ही नीवीबंध । आखों में काजल की रेख और किंकणी-आबद्ध आलता रंजित युगल-चरण । पारदर्शी नोदी से दिखाई देती मोहिनी जंघाए । कंचुकी में बंधे उरोज तनिक मुखर होते हुए । युवराज के लिए प्रतीक्षारत हैं तिष्यरक्षिता । आज जैसे प्रथम बार अपने शरीर-सौष्ठव के अर्जन का अनुभव हुआ है । किसी कल्पना लोक में विचरण कर उठता है मन । अधिक प्रतीक्षा अब असह्य हो उठी है । तनिक आहट से चौंक जाती हैं तिष्यरक्षिता ।

"युवराज की जय हो ।" यह दासी का संकेत है कुणाल के आगमन का । कक्ष के द्वार पर पहुँच गई है राजमहिषी । सम्मुख ही खड़े है युवराज । मस्तक पर चंदन अनुलेपन, दीर्घ केशीय शीश, कानों में मणिकुण्डल । विशाल मनोहारी नेत्रों में अनुग्रह की भावना का भाव । तरुण नेत्रों में अनुग्रह की भावना का भाव । तरूण मुख मंडल, सौम्य किन्तु तेजस्वी । श्वेत रेशमी दुकूल-युग्म, उत्तरीय और अधोवस्त्र । दर्शनीय रूप, कथनीय नहीं । मौन ही खड़े हैं युवराज। नमन की मुद्रा में तनिक नत ।

"भीतर आओ ।" तिष्यरक्षिता आग्रह कर रही हैं । सहज भाव से युवराज आ गए हैं कक्ष में । पीठिका पर कुणाल को बैठकर सम्मुख की शैया के शीर्ष पर बैठ गई है तिष्यरक्षिता । न जाने कब तिष्यरक्षिता ने चम्पक और मंदार के तट के पुष्पों की माला उठाली है और उसे निःसंकोच कुणाल के गले में पहना दिया है । संकुचित हो रहे हैं कुणाल । पल भर में वह हार उतर कर उनकी अंगुलियों में आ गया है । परम सुगंधित हैं यह पुष्प ।" आभार माता । आदेश दें, कैसे स्मरण किया है ?" कुणाल कहते हैं .

"आभार तो समझ गई, माता का संबोधन तुम्हारे मुख से अशोभन लगता है । मैं तुम्हारी माता कहां हूँ ? तुम्हारी माता तो आर्या पद्मावती थी, मैं नहीं । तुम उनके अंश हो युवराज । फिर मेरी तुम्हारी आयु में अन्तर ही कितना है भला ? सत्य तो यह है, तुम्हें देखकर मुझे स्मरण होने लगता है, मेरा काम्य-पुरूष तो तुम्हें होना था कुमार, मात्र तुम्हें ।"

नहीं माता, ऐसा सोचना भी पाप होगा । आपके लिए, मेरे लिए । विमाता भी माता ही होती है । यही समाज का नियम है, परम्परा है, मर्यादा है। मुझे क्षमा करें ।"

"तुम्हारे तर्क से मैं सहमत हो पाती प्रिय । समाज नियम, परम्परा, मर्यादा, मनुष्य

की अपनी कल्पनाए मात्र हैं। व्यक्ति के स्वार्थ–चिंतन का परिणाम। फिर वे सब कहां थे, जब वृद्ध होते हुए परम भट्टारक मेरा परिणय कर रहे थे ? तब मर्यादा का प्रश्न किसने उठाया था ? मेरा परम भट्टारक से विवाह मात्र एक घटना थी। कारण और परिणाम विहीन। मात्र उनकी प्रसन्नता और विनोद का साधन बनी थी मैं।''

''आपके अखंड सौभाग्य अब तात ही हैं, उनके प्रति ऐसी विचारणा महापातकी हैं।''

''कैसा अखंड सौभाग्य और किसका ? – लगभग एक दशक तक मैने तुम्हारे तात को सहा है। मैं अपने इस व्यर्थ जीवन को समाप्त कर देना चाहती हूँ। मेरे पास अधिक समय शेष नही है प्रिय। संकोच और भय त्यागो, मुझे स्वीकार कर लो। तिष्यरक्षिता की यह देह, मन, उष्मा, सब तुम्हारा हैं। तुम्हारी तरुणाई को सार्थक करने की क्षमता मुझमें है। तुम शीघ्र जान जाओगे।''

क्षण भर के लिए कुणाल के सर्वांग में कम्पन्न हुआ। उनके विशाल नैत्र सहसा मुंद चले। शीत में भी मस्तक पर स्वेद बिन्दु छलक उठे। न जाने कब तिष्यरक्षिता ने उस मस्तक को चिंनाशुक से पोंछ डाला ? राजमहिषी के केशों की गंध की मधुर मूर्छना सी छाने लगी। सहसा कुमार ने नेत्र खोले।

''तनिक पुष्पासब लो कुमार। यह तुम्हें स्वस्थ कर देगा।'' तिष्यरक्षिता ने भरा चषक कुमार के हाथ में दे दिया। और देखो, यह श्लक–बंधनी तनिक शिथिल कर दो। मेरा वक्ष घुट सा रहा है प्रिय।''

मद्य की तीव्र गंध कुणाल के नासिका पुटों तक पहुंच गई। जैसे तन्द्रा सी भंग हुई। दूसरे ही क्षण अंगुलिया कांप उठी, और चषक हाथ से छूट कर जा गिरा। सारा मद्य पृथ्वी पर फैल गया। वे प्रकृस्थ हुए।

''आपके मन में वासना की अग्नि प्रज्जवलित हो रही है माता। यह वासना और उसका आवेग आपके लिए भय, दु:ख, और चिन्ता का कारण ही नहीं बनेगा, अपितु किसी अंधीगुहा में आपको ढ़केल देगा।

कुमार पीठिका से उठ खड़े हुए।'' आपने तात का, अपना, और मेरा अपमान किया है। अपमान किया है माता–पुत्र संबंधों का। मैं ऐसे वचन न कहता किन्तु आपने इस उदंडता के लिए विवश ही कर दिया।''

''अपमान तो तुम मेरा कर रहे हो। इस साम्राज्य की अग्रमहिषी का मेरे सौंदर्य और उस रूप का, जिसके तुम योग्य ही न थे। तुम कापुरुष हो। यदि तुम्हारा यही

अन्तिम निर्णय है तो सुनो। मैं तुम्हें इस अपमान और उदंडता के लिए ऐसा दंड दूंगी, जिसकी तुमने कल्पना भी नहीं की होगी। और तब तुम निरीह प्राणी की भान्ति मेरे चरणों में आ गिरोगे, किन्तु मैं तुम्हें क्षमा नहीं करूंगी इस अपराध के लिए।" सक्रोध कहते हुए तिष्यरक्षिता ने सहसा अपने वक्ष से पुष्पहार उतार कर टुकड़े टुकड़े कर दिया। वेणी में बंधे पुष्प गुच्छ नोच डाले।

युवराज कुणाल ने कर-बद्ध प्रणाम किया और वे शीश झुकाए कक्ष से बाहर आए। उनके विशाल नेत्रों से अश्रु बह निकले। मन में एक करूण भाव जागा। मार्ग में अग्रमहिषी की निजी सेविका खड़ी मिली।

कुमार ने कहा -"तुम्हारी स्वामिनी अस्वस्थ हैं। उनके कक्ष में तत्काल पहुंचो और शुश्रुषा करो।" चिन्ता से आशंकित मुद्रा से प्रणाम कर सेविका चल दी। और अग्रमहिषी की अस्वस्थता का समाचार पूरे अंन्त:पुर में फैल गया। कई सेवक-सेविकाए उनकी सेवा में उपस्थित हो गए।

रात्रि का द्वितीय प्रहर यो ही व्यतीत हुआ।

प्रात: की बेला में राजप्रासाद के सिंह द्वार पर परम भट्टारक का रथ आ पहुंचा है। रथ के पीछे शिविका में आसीन है स्थविर उपगुप्त। पीछे-पीछे अंगरक्षकों अश्वारोहियों का एक छोटा सा-दल, बौद्धभिक्षुकों की दो अन्य शिविकाएं। राजप्रासाद के निकट संघाराम में शिविकाए पहुंच गई है। स्थविर उपगुप्त और उनके शिष्य वहीं विश्राम करेगे। केवल परम भट्टारक राज प्रासाद में पहुंच रहे हैं।

सिंहद्वार पर उपस्थित हैं अग्रमहिषी तिष्यरक्षिता। घृतदीप, अगरू, पुष्पों से स्वागत थाल सजाए, अर्ध्य जल, आरती। तीर्थ से लौटे है परम भट्टारक बुद्धम् शरणम गच्छामि, संघम् शरणं गच्छामि, धम्म् शरणम गच्छामि का समवेत स्वर बड़ा भला लग रहा है। वे रथ से दासी के स्कन्ध का सहारा लेकर उतर रहे हैं। चारण के तूर्य वादन के साथ उनके आगमन की सूचना और परम भट्टारक का जयघोष। उसके बिना कुल वधुओं का मंगल गान। तिष्यरक्षिता देख रही हैं, परम भट्टारक अशुक्त, रोगी से दीख पड़ते हैं। श्वांस भर भर आ रहा है। लम्बी लम्बी यात्राएं अब उनके लिए कठिन होती जा रही हैं।

पुष्पहार की गंध लेते हुए तिष्यरक्षिता से कुशल क्षेम पूछ रहे हैं महाराज। फिर युवराज कुणाल को उनकी आंखे खोजने लगती हैं। "युवराज को हमारे आगमन की सूचना नहीं मिली महामात्य ?" परम भट्टारक ने वृद्ध महामात्य से पूछा।

"राजप्रसाद, उद्यान, सभी स्थानों पर उन्हें खोजा था महाराज। प्रतिहारी से पता चला वे अपने रथ पर महिष्मती पधारे हैं गत रात्रि। उन्हें सूचित करने में हम विवश रहे।" महामात्य ने नतशिर होकर उत्तर दिया।

तिष्यरक्षिता जान गई, यह कब कैसे और क्यों घटित हुआ है। "ओह ! किन्तु पाटलिपुत्र में हम उपस्थित नहीं थे, इसका भान भी युवराज को नही रहा। आश्चर्य है हमें।" दो सेविकाओं का आश्रय लिए निज कक्ष में गए भट्टारक तभी प्रतिहारी आ पहुंचा।

"परम भट्टारक की जय हो। तक्षशिला क़ा एक अश्वारोही तुरन्त महाराज का दर्शनाभिलाषी है। कोई गूढ़, पुरूष जान पड़ता है स्वामी।"

"तत्काल उपस्थित करो उसे।"

अश्वारोही ने प्रणाम कर, अपना कूटशब्द कहा-"कहो ? क्या समाचार है ?" पूछा महाराज ने।

"तक्षशिला के महापौर विवर्ण ने विद्रोह कर स्वयं को वहां का एक मात्र शासक धोषित कर दिया है स्वामी ! स्थानीय सैनिकों की टुकड़ी और सेनापति, पौर परिषद के सदस्यगण सब महापौर से जा मिले हैं। महामात्य को बन्दी बना लिया है महाराज।"

"उसका इतना दुस्साहस।" परम भट्टारक क्रोधित हो उठे। तभी प्रत्यंचा की तरह उनकी भृकुटिया वक्र हो गई।" इस बार हम स्वयं जाकर महापौर को मृत्युदंड देगे और शेष विद्रोहियों को आजीवन कारावास।,किसी को भ्रम न रहे। आतताईयों को दंड देना हम जानते हैं। हम क्षत्रिय है और क्षत्र धर्म हम भूले नही हैं। तुरन्त महामात्य और अग्रमहिषी को सूचित करो प्रतिहारी। हमने उन्हें स्मरण किया है।"

सेवक तुरन्त दौड़े। प्रथम महामात्य उपस्थित हुए। फिर कक्ष में आई अग्रमहिषी। परम भट्टारक ने सारा विवरण उन्हे सुनाया और स्वयं तक्षशिला की ओर सेना सहित कूंच करने का प्रस्ताव दोहराया।

"मुझे आप पर गर्व है प्राणेश्वर। किन्तु सारनाथ की यात्रा के तुरन्त बाद सुदूर तक्षशिला की यात्रा स्वामी के स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रतिकूल होगी। साथ की विद्रोहियों की पराजय और उन्हें उचित दंड की व्यवस्था भी हमारा अभीष्ट है। हमारा प्रस्ताव है, युवराज कुणाल को हमारी ओर से तुरन्त सैनाबल के साथ तक्षशिला पहुंचकर विद्रोह के दमन का आदेश दिया जाए। महिष्मती से पाटलिपुत्र लौटे बिना ही वे वहां पहुंचे, और पीछे-पीछे सैन्य दल।" अग्र महिषी ने प्रस्तावित किया।

कुछ देर मौन छाया रहा।

और महामात्र ! आप का परामर्श क्या है ?

परम भट्टारक ने राधागुप्त से पूछा।

''आप आदेश दे महाराज, तुरन्त पालन होगा। फिर अग्रमहिषी ने ठीक ही प्रस्ताव किया है। युवराज कुणाल उस समय तक्षशिला भेजे जाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति रहे हैं। वे पहले भी उसी कार्य हेतु तक्षशिला जा चुके हैं और उज्जयनी की भान्ति वहां के भी शासक रहे हैं।

''हम आपसे सहमत है महामात्य। तत्काल युवराज महिष्मती से तक्षशिला पहुंचे। पदाधिकों और अश्वारोही सेना का एक दल तक्षशिला की नगर प्राचीर के द्वार पर उन्हें तत्पर मिले। यह हमारी आज्ञा है।

प्रणाम कर महामात्य, प्रतिहारी, गूढ़-पुरूष कक्ष से बाहर आए। लघुमंत्रणा हुई और परम भट्टारक के आदेशानुसार व्यवस्थाएं आरंभ हो गई।

परम भट्टारक पुनः शैया तक पहुंचे और लेट गए थके-थके से।

''स्वामी अस्वस्थ दीख पडते है दासी। तुरन्त राजवैद्य को उपस्थित होने का आदेश दो।'' कहती हुई वे पीठिका पर शैया के निकट बैठ गई। फिर आसव मिला शीतल जल परम भट्टारक को पिलाने लगी।

''शरीर मे जैसे वह उर्जा नही रही प्रिय। तनिक सी उत्तेजना से स्नायु दुर्बल होने लगते है। पूर्व जैसा आत्म विश्वास जागता तो है किन्तु फिर शिथिल सा होजाता है। देखो। देखो॥ प्रिय ॥। मेरी दायी भुजा में कैसा कंपन हो रहा है ?''

''देख रही हूँ आर्यपुत्र। मैं जानती हूँ इस व्याधि को उसके कारण को। अवन्तीरथ में एक परमदक्ष चिकित्सक है। वे इस रोग का निदान करने में कुशल है। वे आपको निरोग करेगे। आश्वस्त रहें स्वामी।''

पंद्रह

व्याधिग्रस्त असंधिमित्रा पर-लोक सिधार गई। उनके निधन के पश्चात् विधिवत पट्टमहिषी का पद तिष्यरक्षिता को मिल गया। असंधिमित्रा का बिछोह परम भट्टारको को और भी विकल कर गया है। वे राज प्रसाद् में युवराज, युवराज्ञी और पौत्र संप्रति की अनुपस्थिति से और भी दुःखी थे। परम भट्टारक की आज्ञा से युवराज्ञी कंचनमाला और पौत्र संप्रति पाटलिपुत्र लौट आए हैं। महिष्मति से युवराज कुणाल तक्षशिला के लिए सेना के साथ कूंच कर चुके हैं, यह समाचार पाटलिपुत्र पहुंच चुका है।

परम भट्टारक की चिकित्सा अवंतीरथ्य के अत्यन्त कुशल वैद्य जीवक कर रहे हैं। तिष्यरक्षिता के विश्वासपात्र हैं जीवक। सिद्धरस का प्रयोग अपना प्रभाव दिखाने लगा है। उज्जयनी के तांत्रिक से प्राप्त महाशक्ति कवच तिष्यरक्षिता ने स्वयं परम भट्टारक को पहना दिया है। अब कोई अनिष्ट नही होगा-आश्वस्त कर रही हैं उन्हें पट्टमहिषी।

अत्यंत भावुक होते जा रहे हैं परम भट्टारक इन दिनों। प्रतिदिन बौद्ध भिक्षुओं को दान का क्रम चलता रहता है। उन्हें पारण कराकर तत्पश्चात् भोजन करते हैं परम भट्टारक। प्रतिदिन प्रातः देवानाम् प्रिय परम भट्टारक का जयघोष प्रासाद की अतिथिशाला में गूंजता है। नए महामात्य रूद्रमित्र और मंत्री-परिषद विचार कर रही है। इस प्रकार तो सम्पूर्ण राजकोष ही रिक्त हो जावेगा किसी दिन। वैसे भी स्तूप, स्तंभ गुहाओं, शिलालेखों तथा भिक्षुओं के निवास के लिए विहारों और दर्शगृहों के निर्माण में राजकोष का बहुत बड़ा भाग व्यय हो चुका है। एक ओर जहां कलाकृतियों के निर्माण और धम्म के प्रचार में उल्लेखनीय उपलब्धि हुई है, दूसरी ओर साम्राज्य का अर्थ वैभव भी क्षीण होता गया है। अहिसां एवं शान्ति की नीति के अनुरसण में सेन्यशक्ति का क्षरण भी हुआ। चिंतित हैं मंत्री परिषद। इसलिए अर्थ महामात्र की सम्मति, परम भट्टारक की दान-प्रवृति के उपर अंकुश लगाना अनिवार्य है। मंत्री-परिषद ने वह परामर्श स्वीकार कर लिया है।

कदाचित अन्तिम प्रभात में अंतिम बार स्वर्णपात्र में रखी मुद्राए भिक्षुओं में वितरित कर रहे हैं परम भट्टारक। दूसरे दिन के प्रभात में स्वर्णपात्र का स्थान रजतपात्र ने ले लिया है। और तीसरे दिन प्रतिहारी वितरण हेतु लौह-पात्र सम्मुख रख गया है।

महाराज के प्रश्न करने पर सेवक ने कहा-''वह तो मात्र महामात्य के निर्देश और पट्टमहिषी की आज्ञा का पालन कर रहा है । मन ही मन खिन्न हैं महाराज ।

किन्तु उस दिन तो अवज्ञा और उपेक्षा की पराकाष्ठा हो गई जब भिक्षुओं को वितरण के लिए काष्टपात्र में केवल आमलक रखकर सेवक ने क्षमायाचना में हाथ जोड़े ।

कदाचित् प्रथम बार देवानाम-प्रिय प्रजापालक, धर्मरक्षक, परम भट्टारक को अनुभव हुआ, वृद्धापन मनुष्य को कितना दीन बना देता है ? राज, राजसत्ता और उसका उपयोग कर अवलम्ब किस पर आधारित है ? दिग्विजय कर निजशौर्य से अपनी प्रभुसत्ता कोदिक-दिगान्तर में स्थापित करने की अन्तिम परिणति क्या यही है ? विचार करते रहे परम भट्टारक । इस आघात ने जैसे उन्हें अधिक बूढ़ा कर दिया है । बूढ़ा और शिथिल ।

राजप्रासाद में सुदर्शना युवराज्ञी कंचनमाला का निवास और संचरण प्रतिक्षण अग्रमहिषी तिष्यरक्षिता को अत्यन्त ईर्ष्यालु बनाता जा रहा है । मन ही मन वे अपनी तुलना कंचनमाला से कर उठती है हर बार उनका मन कहता है, वे उससे कहीं अधिक रूपवती हैं । ऐसी क्या विलक्षणता है कंचनमाला में जो उसे असाधारण बनाती है, और जिसके कारण घोर उपेक्षा और अपमान सहना पड़ा है उन्हें। यही वह स्त्री है जो उनके भोग-सुख में बाधक बन गई । अन्यथा युवराज की बलिष्ठ बाहुपाश में इस स्त्री के स्थान पर वे स्वयं होती । निरन्तर प्रतिशोध की अग्नि में जल रही हैं अग्रमहिषी । वह आवेग कभी शान्त नही होता । युवराज को इस मानसिक यातना के लिए अवश्य दंडित करेगी अग्रमहिषी । उस अपमान और उससे उपजी आत्मवंचना के शत-शत दंश और उनकी पीड़ा अब तिष्यरक्षिता को असह्य हो उठी है । जो सुख उसे नहीं मिला, वह और किसी को क्यों मिले ? नारी के उस सौंदर्य और रूप-लावण्य का क्या अर्थ जो नारी को ही भोग के तृप्ति सुख से वंचित कर दे ? परम भट्टारक से पाणिग्रहण उस आत्मवंचना का ''अर्थ ''था । उन्हें भी वंचित कर वह इसकी ''इति''करेगी, उन्हें ही क्यों युवराज को, कंचनमाला को, तभी कदाचित स्वयं को शान्ति मिल सके । अन्यथा प्रतिशोध की अग्नि में उसे सदा जलना होगा । इस भयानक नरक कुंड में । इस भावना से मुक्ति पाने के लिए कोई भी साधन पर्याप्त नहीं । अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करेगीं अग्रमहिषी ।

अत्यन्त दुःखी और निराश से हैं परम भट्टारक । गत तीन रात्रियों से वे सोए ही

नही। निद्रा की औषधि लेने के उपरान्त भी रह रह कर निद्राभंग होती रही है। वैद्यराज जीवक आज रात्रि नई औषधि देंगे। निद्रा आएगी। अवश्य आएगी। वे आश्वासन दे गए हैं।

यह रात्रि। यही वह रात्रि है जिसमें जागती रहेंगी तिष्यरक्षिता। उचित अवसर की खोज में। परमभट्टारक विचारेंगे किंचित, कितनी चिन्ता है उनके स्वास्थ्य की अग्रमहिषी को? संध्या को ही परम भट्टारक को रात्रि भोजन करा रही हैं अग्रमहिषी, जिससे वे शयन जल्दी कर सकें। निद्रा में व्यवधान न हो। अंतःपुर में संध्या पूर्व से गोपन-मंत्रणा वे करती रही हैं। उनकी समस्त चिन्ता अपनी योजना पूरी करने की है। यदि आज रात्रि, फिर कभी अवसर नही आएगा।

परम भट्टारक भी कम अपराधी नही हैं- सोचती है तिष्यरक्षिता। "दो दो महिषियों के उपरान्त भी अपनी अधेड़ आयु में आपने मुझसे परिणय कर अपराध ही तो किया है महाराज। फिर आप एक मात्र मेरे भी कहाँ थे? मैं तो समग्र रूप से आपको चाहती किन्तु आप पूर्व अग्रमहिषी को आजीवन जीते रहे। और उनके निधन के पश्चात् उनका पार्थिव रूप न होने पर भी आप मानसिक रूप से उन्हें ही जी रहे हैं। मेरी श्वासं-प्रश्वांस में आप कभी न समा सके। कितने अंतरंग क्षण आपने मुझे दिए? मुझ पर उज्जयिनी के उस रसोत्सव में आसक्त होकर प्रणय और परिणय का अर्थ क्या अपने राजसी ऐश्वर्य और वैभव का मात्र प्रदर्शन नहीं थी? आपने मेरा परिणय कर अपनी किस प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि की थी? इस राज-प्रासाद में आकर मैं अकारण ही अपमानित और लांछित हुई। कदाचित भावी इतिहास मुझे कुलटा कहेगा? किन्तु राजसत्ता ने मुझे किस प्रकार वन्दिनी बनाया, अपने नारित्व और मातृत्व से मैं कैसे वंचित हुई मैं, यह कौन जान पाएगा?.........

परम भट्टारक घोर निद्रा में लीन हैं। शयन-कक्ष में अकेली हैं अग्रमहिषी तिष्यरक्षिता। विश्वस्तदासी बाहर खड़ी आहट ले रही है। चारों ओर रात्रि की नीरवता पसर चुकी है। केवल अग्रमहिषी का अपना गूढ़-पुरूष तत्पर खड़ा है, आदेश की प्रतीक्षा में।

अग्रमहिषी ने आसन छोड़ दिया। उठकर परम भट्टारक की परीक्षा की। धीमे स्वर में उन्हें पुकारा। और वे अचेत पड़े रहे। फिर निर्ममता से अग्र महिषी ने गुप्त संदेश लिखा पत्र निकालकर, और परम भट्टारक के सिरहाने रखी रत्नमंजूषा उठायी। उनकी गोपनीय दंतमुद्रा निकाली, और संदेश पर अंकित कर रत्न-मंजूषा दंतमुद्रा सहित

यथा स्थान रख दी। कोई नही जान पाया कि क्या घटित हो चुका है। अग्रमहिषी बाहर निकली और दासी को भेजकर गूढ़पुरूष को बुला लिया।

''यह गोपनीय संदेश तक्षशिला के महापौर को तुरन्त जाकर दो और कहो परम भट्टारक के आदेश का तत्काल पालन किया जाए। यह रहा तुम्हारा अग्रिम पुरस्कार तुम्हारे श्रम के लिए।''

गूढ़पुरूष ने संदेश पत्र और स्वर्ण मुद्राओं की थैली लेकर अग्रमहिषी को प्रणाम कर कहा-''आप आश्वस्त रहे स्वामिनी ! आपकी आज्ञा का अक्षरशः अनुपालन होगा।''

अर्द्धरात्रि में ही कूट शब्द कहकर एक अश्वारोही नगर प्राचीर का सिंह द्वार पारकर द्रुतगति से तक्षशिला की ओर जा चुका था। राजप्रासाद में अपने शयनकक्ष में परम भट्टारक दीर्घ निद्रा में लीन रहे। वे जब उठे, सूर्य आकाश में काफी चढ़ आया था। वातायन से धूप कक्ष में फैल चुकी थी।

तक्षशिला का विद्रोह परम भट्टारक के विरूद्ध नहीं था, विरूद्ध था प्रादेशिक विरुषक के प्रति। विरुषक के अत्याचारों से त्रस्त हो चुकी थी तक्षशिला की जनता। महापौर ने प्रयत्न किया था, विरूषक जनपद की जनता को शान्ति से रहने दे एवं स्वयं भी शान्ति से रहे। किन्तु विरूषक ने बल प्रयोग कर महापौर को बन्दी ही नही बनाया, सत्ता के मद में अत्याचारों की पराकाष्ठा ही कर दी। उसकी निरकुंशता और क्रूर शासन से मित्र भी शत्रु बन गए। प्रजा ने विद्रोह कर दिया। स्थानीय सैनिक विद्रोहियों से जा मिले और महापौर को बन्दी ग्रह से छुड़ा लिया गया। विरूषक को मृत्युदंड मिला। तक्षशिला स्वतंत्र राष्ट्र घोषित हो गया।

किन्तु युवराज कुणाल के सेना सहित तक्षशिला पहुंचने की जब सूचना मिली, महापौर सहित नागरिको ने नगर-द्वार पर उनका स्वागत-अभिन्दन किया। विरूषक के अत्याचारों की कथा युवराज तब जान पाए। विरूषक के मृत्युदंड का निर्णय पौर-परिषद ने ही लिया था। पौर-परिषद की असाधारण सभा आयोजित हुई। परम भट्टारक के प्रति, मगध साम्राज्य के प्रति निष्ठा व्यक्त की गई। युवराज सर्व सम्मति से सुयश की उपाधि से सम्मानित किए गए। उसे सहर्ष स्वीकार किया युवराज कुणाल ने।

सौलह

पाटलिपुत्र लौटने की तैयारी में है सुयश कुणाल। परम भट्टारक के लिए अनेक उपहारों को भेजने की व्यवस्था कर रहे हैं महापौर। पौर-परिषद की सभा आयोजित है।

द्वारिक ने सूचना दी-पाटलिपुत्र से एक अश्वारोही महापौर के लिए परम भट्टारक का अत्यन्त गोपनीय व आवश्यक संदेश लेकर उपस्थित होना चाहता है। महापौर से तुरन्त ही एकान्त मे भेंट करने का इच्छुक हैं।

महापौर ने निजी कक्ष में उस गूढ़पुरूष को बुला भेजा। अपना कूट शब्द कहकर अश्वारोही ने प्रणाम किया और परम भट्टारक का दंत-मुद्रा अंकित वह गुप्त-संदेश महापौर को दे दिया। महापौर ने संदेश पढ़ा। पुनः पढ़ा। पढ़कर वे स्तंभित रह गए। परम भट्टारक का आदेश है-"युवराज कुणाल मगध साम्राज्य के अभियुक्त हैं। उनका अपराध अक्षम्य है। दंड स्वरूप अविलम्ब उनकी आँखें गरम लोह शलाकाओं से दागकर उन्हें अविलम्ब दृष्टिहीन कर दिया जाए।"

महापौर को लगा जैसे वे किसी उल्कापात अथवा ध्वंस का दृश्य वे देख रहे है। स्थिति विकट लगी। तुरन्त राजभवन की अतिथिशाला में वे पहुंचे, और युवराज को सम्मुख देखकर उनके नेत्र आर्द्र हो उठे। उनकी स्थिति विचित्र सी लगी। युवराज के बार बार पूछने पर महापौर ने उस गुप्त संदेश का मंतव्य युवराज को बताया।

युवराज ने धैर्यपूर्वक सब सुना। फिर कहने लगे-"कदाचित् मुझसे अवश्य कोई गुरुतर अपराध अथवा दुष्कर्म हुआ है। आप परम भट्टारक के आदेश का पालन करें। मेरे हित-अहित को न विचारें। मगध साम्राज्य के हित में सोचें। यदि मैं दृष्टिहीन भी रहूँ तो क्या अन्तर पड़ता है ? किन्तु राजाज्ञा का पालन करना आपका कर्तव्य है मैं दंड के लिए प्रस्तुत हूँ।"

"आपके विरूद्ध कोई गुप्त षड्यन्त्र भी हो सकता है युवराज। मुझे तनिक सोचने का अवसर दीजिए।" महापौर ने प्रतिवाद किया।

"यह आपकी कल्पना मात्र है मित्र। मेरे विरूद्ध षड्यंत्र कैसा ? निश्चय ही मैं अपराधी हूं। यदि आप परम भट्टारक के आदेश का पालन नहीं करेंगे मैं स्वयं अपनी देह का विसर्जन कर दूंगा। और फिर पिताश्री के चरणों में प्रणाम करने का अवसर

भी निःशेष हो जावेगा। उसका पातक आपको लगेगा महापौर। इतिहास और भावी पीढ़ी कर्तव्य की अवहेलना के लिए आपकी भर्त्सना करेंगे।

महापौर किसी गहन चिन्तन में डूब गए।

"मेरे पास अधिक समय नही है मित्र। निर्णय का क्षण निकट है। आपके लिए भी, मेरे लिए भी। मैं प्रतीक्षा में हूँ।"

महापौर की आंखों से अश्रुधारा बह निकली। "मुझे इतना विवश न करें सुयश कुणाल। पौर परिषद का निर्णय लेने की अनुमति दें।

"कदापि नहीं। परम भट्टारक का आदेश सर्वोपरि है, जिसके प्रति आप पौर-परिषद निष्ठा की शपथ ले चुके हैं। परम भट्टारक की अवज्ञा का अर्थ आप जानते हैं महापौर।"

"ठीक है। यदि आपका भी आदेश यही है तो।"

महापौर हतप्रभ से खड़े रहे।

"हॉ, मेरा भी यही आदेश है किन्तु आप इसकी चर्चा किसी से भी नहीं करेंगे। आपको मेरी शपथ है महापौर।"

महापौर कक्ष से बाहर निकले। तुरन्त दंडनायक को बुलाया एवं परम भट्टारक के आदेश के अनुपालन की आज्ञा दे दी। अपने कर्तव्य का निर्वाह करेंगे महापौर।............

आधी घड़ी बीतते बीतते राजभवन के एकान्त कक्ष में दंडनायक के साथ अग्नि में तप्त लौह शलाकाएं लिए सैनिक उपस्थित हुए। युवराज को बुला भेजा गया। युवराज ने कुछ निमिषों के लिए नेत्र बन्द कर लिए। प्रार्थना की मुद्रा में पीठ पर आसीन रहे। कल्पना में देख उठे पिता श्री को, दिवगंत माता पद्मावती को, फिर स्मृति आई कंचनमाला प्रिय की, पुत्र सम्प्रति का मुख याद आया। स्मरण आया मंजरी का, और उसका वह कथन-"प्रत्येक दुःख में आपकी संगिनी रहूंगी। बाटूंगी आपके दुःख को। आपकी मानसी हूं।" सुयश कुणाल जैसे वह सब कल्पना में देख रहे हैं। उज्जयिनी के आचार्य सुधर्म के गुरुकुल में बिताए वे दिन, काकनद में चेत्यगिरि का स्तूप निर्माण और उत्सव महिष्मति में कंचनमाला और पुत्र संप्रति के साथ बिताई नर्मदा तट की वे संध्याएं।

"शीध्रता करो महापौर।" सहसा युवराज ने अपने दीर्घ नेत्र खोल दिए। दृष्टि धुंधली सी लगी।" वे पुनः पुकार उठे। शीघ्रता करो दंडनायक। आपने सुना नहीं?"

वे अनुनय कर उठे ।

दूसरे ही क्षण तप्त लौह-शलाकाओं का स्पर्श नेत्रों में अनुभव हुआ । असहय पीड़ा हुई । युवराज ने दांतों से ओष्ठ दबाए रखा । रक्त बह निकला । दिन के प्रकाश में भी अमावस्या की रात्रि का आभास होने लगा ।

"आपका आदेश पूरा हुआ पिता ।" युवराज के मुख से निकला । उपस्थितजन मौन रुदन कर उठे ।

अभी पिछले सप्ताह ही पाटलिपुत्र एक समाचार पहुंचा था । तक्षशिला का विद्रोह समाप्त हुआ । देशद्रोही विरूषक को प्राणदंड मिला युवराज कुणाल को पौर-परिषद ने सुयश की उपाधि से अलंकृत किया है । परम भट्टारक के लिए नाना उपहार लेकर शीघ्र मगध लौट रहे हैं युवराज ।

युवराज के स्वागत की तैयारियां करने का आदेश परम भट्टारक ने दिया है । नागरिक अभिनन्दन करेगी नागरिकों की सभा और मंत्री परिषद राजकीय सम्मान प्रदान करेगी ।

किन्तु जानती हैं अग्रमहिषी तिष्यरक्षिता । उनकी कूटनीति असफल हो ही नहीं सकती । अपने गूढ़ पुरूष के लौटने की वे निरन्तर प्रतीक्षा कर रही हैं । किसी को संदेह न हो । गूढ़-पुरूष से समाचार प्राप्त कर उसे पुरस्कृत कर पाटलिपुत्र छोड़ने का आदेश देगी अग्रमहिषी ।

वह क्षण भी प्रत्यक्ष हो गया । चिर प्रतीक्षित समाचार मिल गया तिष्यरक्षिता को। प्रतिशोध पूरा हुआ । शरीर के अणु-अणु में व्याप्त अपमान का दंश और उसकी पीड़ा जाती रही । "अपने किए" अपराध का दंड तुम पा गए युवराज । अब किसी नारी सौंदर्य को तुम जीवन में देख ही न पाओगे । किन्तु मेरी तृशा ? क्या वह तृप्त हो सकेगी। किन्तु मैं अपने गंतव्य पर पहुंच गई ।" समाचार देकर गूढ़पुरूष अन्तर्ध्यान हो गया।

पाटलिपुत्र के राजमार्ग पर अपार जन समुदाय उमड़ा चला आ रहा है । नगर में समाचार वन दावानल की तरह फैल चुका है, युवराज कुणाल बन्दी के रूप में प्रवेश कर चुके हैं । परम भट्टारक की आज्ञा से वे दृष्टिहीन कर दिए गये । ऐसा कौनसा दुष्कर्म किया था युवराज ने ? सबकी जिव्हा पर एक ही प्रश्न है । राजप्रासाद के मुख्य द्वार पर बन्दी युवराज खड़े हैं । राजकीय अपराधी हैं । अत: प्रासाद में प्रवेश की अनुमति नहीं है । परम भट्टारक सूचित हुए । युवराज परम भट्टारक की आज्ञा से दंड पा गए।

उनके दोनों नेत्रों को ज्योतिहीन कर दिया गया ।

"मेरी आज्ञा ? कैसी आज्ञा ?" चीख पड़े परम भट्टारक। "हाँ महाराज आपकी आज्ञा। अग्रराजमहिषी का गूढ़-पुरूष पहुंचा था तक्षशिला, आपका दंत-मुद्रा अंकित गुप्त संदेश लेकर।" तक्षशिला के चर ने निवेदन किया।

परम भट्टारक राज प्रासाद के बाहर तुरन्त पहुंचे। सम्मुख खड़े पुत्र को देखकर मूक रुदन कर उठे। "यह दुर्गति तुम्हारी किसने की वत्स ? कहां है अग्रमहिषी और उनका गूढ़-पुरूष ? तुरन्त उन्हे प्रस्तुत करो।" परम भट्टारक के अंगरक्षक अग्रमहिषी तिष्यरक्षिता को बन्दी बनाकर ले आए हैं। उनके साथ ही पीछे पीछे युवराज्ञी कंचनमाला और कुमार संप्रति। सारा राजकुल और प्रजाजन संक्षुब्ध. खड़े हैं।

"तुमने घोर अपराध किया है तिष्यरक्षिता। मगध साम्राज्य के प्रति, मगध की जनता के प्रति। उत्तर दो। मैं तुम्हें इस अभियोग का अभियुक्त घोषित करता हूं। तुमने ऐसा निर्ममतापूर्ण कुकृत्य कैसे किया ? उत्तर दो॥"

"अग्रमहिषी का दीर्घमौन उनका अपराध सिद्ध कर चुका महाराज। वे इस जघन्य अपराध के दंड की घोषणा करें स्वामी। हमारे सामने आज ही और अभी।" जन समुदाय पुकार पुकार कर कह उठा। जन आक्रोश के बीच समय बीत रहा है। परम भट्टारक का प्रश्न अनुतरित है।

युवराज्ञी कंचनमाला के अश्रुओं का बांध टूट गया है-"गुरु जन मुझे क्षमा करें। अग्रमहिषी को जो भी दंड मिले, इस राजप्रासाद का त्याग कर रही हूं मैं। सम्प्रति को मैं परम भट्टारक को सौंपती हूँ। वे राजकुल और साम्राज्य की धरोहर थे मेरे पास।" युवराज्ञी पुत्र सहित विलाप कर उठीं।

"न्याय में विलम्ब कर रहे हैं महाराज।" प्रजाजन अधीर हो रहे हैं।

"तो प्रजाजन सुने। मैं परम भट्टारक मगधाधिपति तिष्यरक्षिता को राज्य के प्रति षड्यन्त्र और युवराज को भयानक क्षति पहुंचाने का अपराधी घोषित करता हूँ और अग्नि में उनके देह दहन का प्राणदंड देता हूँ।"

"नही महाराज ! पिताश्री नहीं !! मैं आपका पुत्र कुणाल अंतिम प्रार्थना कर रहा हूँ मगध-सम्राट से। माता तिष्यरक्षिता का अपराध क्षमा करें तात्। दंड का विधान तो भागवती सत्ता के अधीन है। प्रकृति स्वयं दंड देने में समर्थ है। देवानाम् प्रिय दया करें माता पर। और माता मैं आपका पुत्र, उन सभी अपराधों की क्षमा मांग रहा हूँ, जो मैंने आपके प्रति किए हो। और देवी कंचनमाला, तुम नित्य मेरे साथ मेरी कल्पना में रहोगी, जिस जीवन को जीने के लिए मैं अभिशप्त हूँ, उसे मैं जिऊंगा। मेरी आज्ञा

है, तुम उसे नहीं अपनाओगी। वत्स संप्रति अपने प्रपिता और माता की सेवा करें। मैं परम स्वतन्त्र हुआ। 'त्राहिमाम्, पुकार उठी तिष्यरक्षिता।

"हमें, हमें छोड़कर न जाओ पुत्र।" परम भट्टारक चिल्ला उठे। तभी राज पथ पर दूर से काषाय और चीवर धारण किए भिक्षु आते दिखाई पड़े। अपने शिष्यों के साथ निकट आए। पहचान गए परम भट्टारक" स्थविर निर्ग्रन्थ को।

"भिक्षां देहि !" स्थविर निर्ग्रन्थ ने दोहराया। फिर उनके मुख पर परम शान्ति दिखाई देने लगी। भिक्षा पात्र उठाए वे पुनः परम भट्टारक के सम्मुख आए। हठात् कुणाल ने वह वाणी सुनी। वे पथ टटोलते उस वाणी की दिशा में बढ़े।..........

कुणाल ने स्थविर के चरण पकड़ लिए।

"मुझे अपनी शरण में लें प्रभु।" कुणाल की वाणी आर्द्र हो उठी। शोक से विह्वल परम भट्टारक रो पड़े। आचार्य कुछ क्षण मौन रहे। जन समुदाय श्वांस रोके खड़ा था।

"मुझ पर कृपा करें आचार्य। मैं देख तो नहीं सकता। किन्तु इन चरणों का स्पर्श कर रहा हूँ, मेरा कल्याण इन्हीं में निहित है। मुझे पृथक न करें भन्ते। आश्रय दें।"

"उठो। त्रिशरण में आओ वत्स ."

स्थविर ने कुणाल को उठाकर वक्ष से लगा लिया। तथागत के अनुग्रह से तुम्हें महाकरुणा मिले। चलो, यहां से चलें।"

स्थविर निर्ग्रन्थ अब सुयश कुणाल के साथ राजपथ की ओर लौट रहे हैं। प्रजाजन युवराज की जय-जय-कार कर रहे हैं। पीछे छूट रहा है प्रासाद और कोलाहल।.................

☆ ☆